गायत्री का मंत्रार्थ

श्रीराम शर्मा आचार्य

वन्दे वेद मातरम्

गायत्री—मंत्रार्थ

लेखक :
वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

२०१०

मूल्य : १८.०० रुपये

ॐ भूर्भुवः स्वः

तत्सवितुर्वरेण्यं

भर्गो देवस्य धीमहि

धियो यो नः

प्रचोदयात्

भूमिका

गायत्री के २४ अक्षरों में ज्ञान–विज्ञान का महान् भण्डार छिपा हुआ है । उसके एक–एक अक्षर में इतना दार्शनिक तत्वज्ञान सन्निहित है जिसका पूरी तरह पता लगाना कठिन है । आध्यात्मिक और भौतिक सभी प्रकार के ज्ञान–विज्ञान उसके गर्भ में मौजूद हैं, जिनका यदि ठीक–ठीक पता चल जाय तो मनुष्य उन सभी वस्तुओं को प्राप्त कर सकता है जो उसे अभीष्ट हैं ।

गायत्री वेद माता है । गायत्री से ही चारों वेद और उनकी ऋचायें निकली हैं । वेद समस्त विद्याओं के भण्डार हैं । समस्त तत्वज्ञान और भौतिक–विज्ञान वेदों के अन्तर्गत मौजूद है । जो कुछ वेद में है उसका सार गायत्री में है । यदि कोई गायत्री को भली प्रकार समझ ले तो उसे वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद् आदि की सभी बातों का ज्ञान स्वयमेव हो सकता है ।

एक–एक अक्षर का, एक–एक पद का, क्या अर्थ, भाव, रहस्य एवं सन्देश है, उसको जानने के लिए मनुष्य का एक–एक जीवन भी अपर्याप्त है । गायत्री के २४ अक्षर ज्ञान–विज्ञान के २४ समुद्र हैं उनका पार पाना साधारण काम नहीं

है । फिर भी उनका कुछ संक्षिप्त–सा परिचय पाठकों को हो जाय, इस उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है ।

विभिन्न ऋषियों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से गायत्री महामन्त्र का अर्थ किया है । अनेक ग्रंथों में अनेक प्रकार से उसके भाष्य उपलब्ध हैं । यह भिन्नता प्रतिकूलता या विरोध की द्योतक नहीं वरन् एक–दूसरे की पूरक है । जो बात एक से छूट गई है, वह दूसरे में पूरी की गई है, फिर भी यह सब मिलाकर गायत्री का अर्थ सर्वांगपूर्ण हो गया है ऐसा नहीं कहा जा सकता । जितना प्रकट हुआ है उसकी अपेक्षा अनेक गुना रहस्य अभी अप्रकट है ।

इतने विशद ज्ञान भण्डार की सम्पूर्णतया जानकारी होना मनुष्य की स्वल्प बुद्धि के लिए कठिन है । हमारे जैसे साधारण व्यक्ति के लिए तो वह और भी कठिन है । सार्वजनिक उपयोग के लायक जितना कुछ अर्थ–ज्ञान हम उपस्थित कर सकते थे, उपस्थित किया है । आशा है कि गायत्री का अर्थ जानने के उत्सुक जिज्ञासुओं के लिए यह पुस्तक किसी हद तक उपयोगी ही सिद्ध होगी ।

–श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय सूची

(प्रथम खण्ड)

द्वितीय खण्ड

गायत्री मंत्रार्थ

मंगलाचरणम्

यन्मंडलं दीप्तिकरं विशालम्
रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम् ।
दारिद्र्य दुःखक्षयकारणं च,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १॥

जिसका मण्डल प्रकाश देने वाला, विशाल रत्न प्रभा वाला, तेजस्वी तथा अनादि रूप है, जो दरिद्रता और दुःख को क्षय करने वाला है, वह उपासनीय सविता मुझे पवित्र करे ।

यन्मंडलं देवगणैः सुपूजितम्
विप्रैः स्तुतं मानवमुक्तिकोविदम् ।
तं देवदेवं प्रणमामि भर्गं,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ २॥

जिसका मण्डल देवगणों द्वारा पूजित है, मानवों को मुक्ति देने वाला है, विप्रगण जिसकी स्तुति करते हैं, उस देव सूर्य को प्रणाम करता हूँ, वह उपासनीय सविता मुझे पवित्र करे ।

यन्मंडलं ज्ञानघनंत्वगम्यं,
त्रैलोक्य पूज्यं त्रिगुणात्मरूपम् ।
समस्त तेजोमय दिव्य रूपं
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ३॥

जिसका मण्डल ज्ञान के घनत्व को जानता है, जो त्रय लोक द्वारा पूजित एवं प्रकृति स्वरूप है, तेज वाला एवं दिव्य रूप है । वह उपासनीय सविता मझे पवित्र करे ।

यन्मण्डलं गूढ़यति प्रबोधम्,
धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम् ।
तत् सर्वपापक्षय कारणं च,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥४॥

जिसका मण्डल गुप्त योनियों को प्रबोध रूप है, जो जनता के धर्म की वृद्धि करता है, जो समस्त पापों के क्षय का कारणीभूत है वह उपासनीय सविता मुझे पवित्र करे ।

यन्मण्डलं व्याधि विनाशदक्षम्,
यदृग् यजुः सामसु सम्प्रगीतम् ।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥५॥

जिसका मण्डल रोगों को नष्ट करने में दक्ष है, जिसका वर्णन ऋक्, यजु और साम में हुआ है, जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग तक प्रकाशित है वह उपासनीय सविता मुझे पवित्र करे ।

यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति,
गायन्ति यच्चारण सिद्धसङ्घाः ।
यद्योगिनो योगजुषां च सङ्घाः,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥६॥

वेदज्ञ जिसके मण्डल का वर्णन करते हैं, जिसका गान चारण तथा सिद्धगण करते हैं, योग युक्त योगी लोग जिसका ध्यान करते हैं, वह उपासनीय सविता मुझे पवित्र करे ।

यन्मण्डलं सर्व जनेषु पूजितं,
ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके ।
यत्काल कालादिमनादि रूपम्,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥७॥

जिसके मण्डल का पूजन सब लोग करते हैं, मृत्युलोक में जो प्रकाश फैलाता है, जो काल का भी काल रूप है, अनादि है वह उपासनीय सूर्य मुझे पवित्र करे ।

यन्मण्डलं विष्णुचतुर्मुखास्यं,
यदक्षरं पापहरं जनानाम् ।
यत्कालकल्पक्षयकारणं च,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥८॥

जिसका मण्डल विष्णु तथा ब्रह्मस्वरूप है, जो अक्षर है और जनों का पाप नष्ट करता है, जो काल को भी नष्ट करने में समर्थ है, वह उपसनीय सूर्य मुझे पवित्र करे ।

यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धं,
उत्पत्तिरक्षा प्रलय प्रगल्भम् ।
यस्मिन् जगत् संहरतेऽखिलं च,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥९॥

जिसके मण्डल द्वारा विश्व का सृजन हुआ है, जो उत्पत्ति, रक्षा तथा संहार करने में समर्थ है, जिसमें यह समस्त जगत् लीन हो जाता है, वह उपासनीय सविता मुझे पवित्र करे ।

यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोः,
आत्मा परं धाम विशुद्धतत्वम् ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मयोगपथानुगम्यं,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥१०॥

जिसका मण्डल सर्व व्यापक विष्णु का स्वरूप है, जो आत्मा का परम धाम है और जो विशुद्ध तत्व है, योग पथ से सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद को भी जानता है, वह उपासनीय सविता मुझे पवित्र करे ।

यन्मण्डलं ब्रह्मविदो वदन्ति,
गायन्ति यच्चारण सिद्धसंघाः ।
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥११॥

जिसके मण्डल का वर्णन ब्रह्मज्ञ करते हैं, जिसका यशोगान चारण और सिद्ध गण करते हैं, जिसकी महिमा का वेदविद् स्मरण करते हैं, वह उपासनीय सविता मुझे पवित्र करे ।

यन्मण्डलं वेद विदोपगीतं,
यद्योगिनां योगपथानुगम्यम् ।
तत्सर्ववेदं प्रणमामि दिव्यं
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १२॥

जिसके मण्डल का वर्णन वेदविद् करते हैं, योग–पथ का अनुसरण करके योगी लोग जिसे मानते हैं, उस सूर्य को प्रणाम है, वह उपासनीय सविता हमको पवित्र करे ।

उपरोक्त प्रार्थना में भगवान सविता की वन्दना है । सावित्री भी सविता की शक्ति है । गायत्री मन्त्र में भगवान का पुल्लिंग शब्दों से अभिवन्दन किया है, माता की स्त्री लिंग शब्दों में उपासना की जाती है । यह लिंग भेद कई व्यक्तियों को भ्रम में डालता है । वस्तुतः सविता और सावित्री, ईश्वर और ब्रह्म एक ही हैं । वह न स्त्री है, न पुरुष, या वह दोनों ही हैं, स्त्री भी और पुरुष भी । जब हम माता के रिश्ते में प्रभु की उपासना करते हैं तो वह गायत्री आराधना कहलाती है ।

गायत्री शब्द का अर्थ

ऐतरेय ब्राह्मण में गायत्री शब्द का अर्थ करते हुए कहा गया है–

"गयान् प्राणान् त्रायते सा गायत्री ।"

अर्थात्–जो गय (प्राणों की) रक्षा करती है, वह गायत्री है । गति, क्रिया, विचार शक्ति, विवेक एवं जीवन धारण करने वाला तत्व है, वह प्राण कहलाता है । इस प्राण के कारण हम जीवित हैं । जब प्राण निकल गया तो जीवन का अन्त ही समझिए, प्राण रहित देह से कुछ प्रयोजन नहीं सधता । उसे तो नष्ट कर देना ही हितकर समझा जाता है । इसलिए उसे गाढ़ या जला देते हैं । प्राण होने के कारण जीव को प्राणी कहते हैं, बिना प्राण का पदार्थ तो जड़ होता है । जब किसी प्राणी का प्राण निर्बल पड़ जाता है तो उसका बाह्य शरीर ठीक दिखाई देते हुए भी वह भीतर ही भीतर खोखला हो जाता है । कई

व्यक्ति शरीर से मोटे दीखते हुए भी भीतर से बड़े निर्बल होते हैं । कोई कष्टसाध्य परिश्रम उनसे नहीं होता, वे थोड़ा–सा श्रम करने में बेतरह थक जाते हैं, सिर घूमने लगता है, हाथ–पाँव शिथिल हो जाते हैं, दम फूलने लगता है । उनका चेहरा निस्तेज, प्रभाव रहित, आँखें गीली, मटीली होती हैं और वाणी में जरा भी प्रभाव नहीं होता । कोई छोटी–मोटी बीमारी हो जाने पर उसे ठीक होने में मुद्दत लग जाती है । इस प्रकार की भीतरी निर्बलताऐं शरीर में दीख पड़ती हैं । उनमें बल–वीर्य की बहुत न्यूनता हो जाती है ।

प्राण शक्ति के अभाव में मन का भी बुरा हाल हो जाता है । भय या अनिष्ट की आशंकाऐं अकारण मन में उठती रहती हैं, ऐसा लगता रहता है कि कहीं अमुक प्रकार की आपत्ति न आ जाय, कहीं अमुक संकट उपस्थित न हो जाये । कोई विपत्ति सचमुच ही ऊपर आ जाय तब तो उनका बुरा हाल हो जाता है, हर घड़ी दिल धड़कता है, रात को नींद नहीं आती, ऐसा अनुभव होता है, मानो कोई उसे बुरी तरह कुचल रहा है । भीरुता एवं निराशा उसे घेरे रहती है । जिस काम को करने की सोचता है उसी में असफलता सूझती है । दुनियाँ के सब लोग स्वार्थी, धूर्त, बेवकूफ एवं शत्रु दिखाई पड़ते हैं, किसी की सचाई सदाशयता एवं सद्भावना पर विश्वास नहीं होता । यह सब प्राण की कमी के लक्षण हैं । दुःस्वप्न, घबरा जाना, चिन्तातुर रहना, नास्तिक सा बन जाना आदि बातें प्राण शक्ति की न्यूनता से होती हैं । निष्प्राण तो उसे कहते हैं जो पूरी तरह प्राण रहित हो जाता है, जड़ बन जाता है, पर न्यून–प्राण उसे कहते हैं जो भीतरी और बाहरी दृष्टि से निर्बल हो गया है और उन निर्बलताओं का दुःख प्रतिक्षण भुगतता रहता है क्योंकि न्यून–प्राण की थोड़ी सी मात्रा भोजन पचाना, निद्रा, रक्ताभिसरण, श्वास–प्रश्वास आदि में ही खर्च हो जाती है फिर अन्य उन्नति करने वाले तथा रक्षा करने वाले कार्यों के लिए शक्ति नहीं बच पाती, फलस्वरूप उनकी व्यवस्था ठीक तरह नहीं चल पाती है और वह हर दिशा में असफलता का शिकार होता रहता है ।

प्राणवायु की स्थिति इससे भिन्न होती है । उसकी नस–नस में उत्साह होता है, मन में हर घड़ी नई तरंगें उठती हैं, हृदय में दृढ़ता, साहस, धैर्य, आशा एवं स्फूर्ति की भावनायें गूँजती रहती हैं । वह प्रत्यक्षतः चाहे दुबला–पतला दिखाई देता हो, कम पढ़ा लिखा हो, पिछड़ी हुई परिस्थितियों में रहता हो तो भी वह अपने प्राण बल के आधार पर ऐसे–ऐसे अवसर प्राप्त करता है, ऐसे–ऐसे कार्य कर दिखाता है जिसे देखकर अधिक साधन सामर्थ्य रखने वाले व्यक्तियों को भी आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है । मनुष्य में जो शक्ति है वह हाड़, माँस, रक्त, रस की नहीं प्राण की शक्ति है । मरने के बाद हाड़, मांस तो सब मौजूद रहते हैं पर केवल प्राण निकल जाते हैं । इस प्राण के हटते ही शरीर से सारे कल–पुर्जे निरर्थक सिद्ध होते हैं । जीवन का सार प्राण है, क्योंकि सभी प्रकार की भौतिक शक्तियाँ प्राण के अन्तर्गत रहती हैं । जिसका प्राण जितना ही सबल है, अधिक है, सुरक्षित है, वह उतना ही पुरुषार्थी एवं शक्तिशाली और अपने प्रयत्न में वे सब बातें प्राप्त करेगा जिनके द्वारा आन्तरिक और बाह्य सुख शान्ति को प्राप्त किया जा सकता है ।

इन सब बातों पर विचार करने से प्रकट हो जाता है कि जीवन का सार प्राण है । यह प्राण स्वभावतः परमात्मा ने हमें प्रचुर मात्रा में दिया है । प्राण का अक्षय भण्डार हमारे चारों ओर लहलहा रहा है । उसमें से मनमानी मात्रा में हम अपने लिए ग्रहण कर सकते हैं । इतना होने पर भी जो लोग निर्बल प्राण देखे जाते हैं वे अपनी इस दैवी शक्ति को सुरक्षित रख सकते हैं । ऐसी दशा में खर्च कर देते हैं, जहाँ बहुत सारा अंश निरर्थक हो जाता है इस व्यय को रोकने से मनुष्य प्राणवान् बन सकता है। व्यय किस तरह रुके, इसका समाधान ऐतरेय ब्राह्मण ने कर दिया है । उसका कथन है कि गायत्री प्राणों की रक्षा करती है । ऐसे अन्य प्रमाण भी मिलते हैं जिनसे प्रकट होता है कि गायत्री नाम इसलिए पड़ा है कि वह प्राणों की रक्षा करती है ।

प्राणा गया इति प्रोक्तात्त्रायते तानथापि वा ।–भारद्वाज

अर्थात्–गय प्राणों को कहते हैं जो प्राणों की रक्षा करती है वह गायत्री है ।

तद्यत्प्राणं त्रायते तस्माद् गायत्री ।

–वृहदारण्यक ५/१४/४

अर्थ–जिससे प्राणों की रक्षा होती है वह गायत्री है ।

गयान् त्रायते गायत्री ।

–शंकर भाष्य

अर्थ–प्राणों की रखा करे वही गायत्री है ।

गायस्त्रायते देवि ! तद्गायत्रीति गद्यसे ।
गयः प्राण इति प्रोक्तस्तस्य त्राणादपीति वा ॥

–वशिष्ठ

अर्थ–हे देवि ! तुम उपासक की रक्षा करती हो, इसलिए तुम्हारा नाम गायत्री पड़ा है ।"गय" प्राणों को कहते हैं, प्राणों की रक्षा करने से गायत्री नाम होता है ।

गयाच्छिष्यान् यतस्त्रायेत्कायं प्राणास्तथैव च ।
ततः स्मृतेयं गायत्री सावित्रीयं ततो यतः ।
प्रकाशनात्मा सवितुर्वाग्रूपत्वात्सरस्वती ।

–अग्नि पुराण २१/६७/१, २

अर्थ–शरीर और प्राणों की रक्षा करने के कारण गायत्री नाम हुआ और प्रकाश स्वरूप होने के कारण सावित्री तथा वाणी रूप से सरस्वती कहलाई ।

गायत्री प्रोच्यते तस्माद् गायन्तां त्रायते यतः ।

–याज्ञवल्क्य

अर्थ–उसे गायत्री इसलिए कहा जाता है क्यों कि वह प्राणी की रक्षा करती है ।

इन प्रमाणों पर विचार करने से प्रकट हो जाता है कि गायत्री वह तत्व है जो हमारे प्राणों की रक्षा करता है । अब देखना है कि यह

किस प्रकार होता है । इस प्रकार के प्रश्न करते हुए हमें यह जानना होगा कि गायत्री है क्या ? श्रीशंकराचार्य जी ने अपने भाष्य में इसको स्पष्ट किया है । वे कहते हैं–

"गीयते तत्वमनया गायत्रीति ।"

अर्थात्–जिससे तत्व जाना जाये, वह गायत्री है । जिस विवेक बुद्धि से, ऋतम्भरा प्रज्ञा से तत्व को, वास्तविकता को जाना जा सकता है वह गायत्री है ।

तत्व और अतत्व का, सत्य और असत्य का, श्रेय और अश्रेय का जो बुद्धि निर्णय कर देती है, हमें क्या करना क्या न करना, इसका निर्णय दिव्य प्रकाश के आधार पर करने वाली ऋतम्भरा बुद्धि एक ऐसी अद्‌भुत शक्ति है जिसकी तुलना में विश्व की और कोई शक्ति मनुष्य के लिए हितकारी नहीं । तमसाच्छादित बुद्धि में चाहे कितना ही चातुर्य क्यों न हो, चाहे वह कितनी ही तीक्ष्ण, कितनी ही उपजाऊ और कमाऊ क्यों न हो, उससे मनुष्य का सच्चा हित नहीं हो सकता और न उससे आत्मिक सुख–शान्ति के दर्शन हो सकते हैं । भोग–विलास के थोड़े से उपादान वह जरूर जमा कर सकती है, पर उन उपादानों के कारण चिन्ता, भय, आशंका, तृष्णा, मोह, मद आदि की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि उनका भार आत्मा के लिए असाधारण रूप से कष्टदायक सिद्ध होता है । जो सम्पत्ति नीति–अनीति का ध्यान न रखकर इसलिए कमाई जाय कि उससे सुख की वृद्धि होगी, वह उल्टा परिणााम उपस्थित करती है । थोड़ी–सी बाहरी तड़क– भड़क दिखाकर भीतर का सारा आनन्द नष्ट कर देती है । उस आन्तरिक अशान्ति के कारण छोटे–मोटे अनेकों शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक रोग उपज पड़ते हैं और वे हर घड़ी उस आदमी को बेचैन बनाये रहते हैं, जो अपने को बुद्धिमान समझने का दम भरता है । तमसाच्छन्न बुद्धि जितनी अधिक तीक्ष्ण होगी उतना अधिक विपत्ति का कारण बनेगी, ऐसी बुद्धि तो जितनी मन्द हो उतना ही उत्तम है ।

गायत्री उस बुद्धि का नाम है, जो सतोगुणी दैवी–तत्वों से

आच्छादित होती है, जिसकी प्रेरणा से मनुष्य का मस्तिष्क और शरीर ऐसे मार्ग पर होता है, जिस पर चलते हुए पग-पग पर कल्याण के दर्शन होते हैं। जिससे हर कदम पर आनन्द का संचार होता है। सात्विक विचार और कार्यों को अपनाने से मनुष्य की प्रत्येक शक्ति की रक्षा और वृद्धि होती है। उसकी प्रत्येक क्रिया उसे अधिक पुष्ट, सशक्त एवं सुदृढ़ बनाती है और वह दिन-दिन अधिक शक्ति सम्पन्न बनता है।

तमसाच्छादित बुद्धि द्वारा उत्पन्न हुए विचार और कार्य हमारी प्राण शक्ति को दिनों दिन घटाते हैं। भोग प्रधान कार्यों से शरीर दिनों दिन क्षीण होता है, स्वार्थ-प्रधान विचारों से मन दिन-दिन अथाह पाप-पंक में फँसता है, इस प्रकार जीवन की पेंदी में असंख्य छिद्र हो जाते हैं जिनमें होकर सारी उपार्जित शक्ति नीचे नष्ट हो जाती है। चलनी में चाहे कितना भी दूध दुहा जाय, सब नीचे गिर जायगा और चलनी खाली की खाली रह जायगी, यही बात तमसाच्छन्न बुद्धि के लोगों के बारे में है। कितना ही कीमती भोजन हो सब विषय भोगों की, चटोरपन की उष्णता में जल जायेगा। वे चाहे जितनी बुद्धि दौड़ाकर नई कमाई करें पर तृष्णा, स्वार्थपरता, भय, अहंकार, लोभ आदि कारणों से चित्त सदा दुःखी ही रहेगा और उससे मानसिक शक्तियाँ नष्ट होती रहेंगी। इन दोनों करणों से प्राण निर्बल होता रहेगा और वह न्यून प्राण व्यक्ति संसार में नाना प्रकार के उद्वेगों में किसी प्रकार हीन जीवन ही व्यतीत करता रहेगा।

सतोगुणी, ऋतम्भरा विवेक बुद्धि हमारे शारीरिक आहार-विहारों को सात्विक रखती है। संयम, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, श्रमशीलता, सादगी प्राकृतिक दिनचर्या होने से बल-वीर्य बढ़ता है और शरीर सक्रिय रहता और दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। मन में अपरिग्रह, परमार्थ, सेवा, त्याग, सहिष्णुता, तितीक्षा, दया, सहानुभूति, मैत्री, करुणा, नम्रता निरहंकारिता, धर्म, श्रद्धा, ईश्वर परायणता आदि की भावना काम करती है। यह भावना जहाँ रहती है, वहाँ के परमाणु सदैव प्रफुल्ल

और चैतन्य रहते हैं तथा उनका विकास होता है । इस प्रकार शरीर और मन दोनों की सुरक्षा एवं बुद्धि की सात्विक उन्नति होने के कारण प्राप्त शक्ति सुरक्षित रहती है और उसकी वृद्धि होती है । इस प्रकार गायत्री सद्‌बुद्धि देकर हमारी प्राण रक्षा का हेतु बनती हुई अपने नाम को सार्थक करती है ।

अज्ञानान्धकार में भटकते हुए माया-बन्धनों से बँधकर तड़फड़ाते हुए नीच तत्वों के दलदल में फँसे हुए प्राणी इस दुर्लभ जीवन को दुःख-दारिद्रय की यातनाओं में घुला-घुलाकर नष्ट करते हैं । उनके लिए गायत्री एक प्रकाश है, एक आशापूर्ण सन्देश है, एक दिव्य प्रकाश है जिससे कि उसके अन्तर्गत समस्त भौतिक, आध्यात्मिक, सांसारिक और मानसिक आनन्दों का स्रोत खुला हुआ है । वह हमारे मुँदे हुए विवेक के तृतीय नेत्र को खोलती है उसे ज्योति देकर इस योग्य बनाती हे कि संसार को विवेक दृष्टि से देख सकें और जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकें ।

वेद जननी गायत्री विश्व की समस्त श्रेष्ठ शक्तियों को उत्पन्न करती है और उन्हें अपने दिव्य प्रकाश से आलोकित करती है, इसलिए उसे सावित्री भी कहा जाता है । यथा-

सवितृद्योतनात् सैव सावित्री परिकीर्तिता ।
जातः प्रसवितृत्वात् वाग् रूपत्वात् सरस्वती ॥

-व्यास

अर्थ-विश्व को उत्पन्न कर उसको प्रकाशित करने से सावित्री नाम हुआ और वाक् रूप होने से वह सरस्वती कहलाई । यों तो-

गायत्री गायतेः स्तुति कर्मणः ।

-निरुक्त

अर्थ-स्तुति कर्म में कहे गये छन्द को गायत्री कहते हैं और

चतुर्विंशत्यक्षराणां सत्वेन गायत्री छन्द ।
स्करतयापीयं गायत्रीत्यभिधीयते ॥

-तारकानाथ भाष्य १६/१०

अर्थ–चौबीस अक्षरों से निर्मित छन्द को गायत्री कहते हैं ।

यह सब परिभाषाऐं गायत्री की महान महिमा की तुलना में बहुत ही नगण्य हैं । वेद की महिमा का वर्णन करना कठिन है, फिर वेदमाता की परिभाषा, व्याख्या और उसके गर्भ में छिपे हुए महान श्रेय का वर्णन तो हो ही कैसे सकता है । यह तो उसका अँगुलि निर्देश मात्र है ।

ॐ की व्याख्या

ॐकार को ब्रह्म कहा गया है । वह परमात्मा का स्वयं सिद्ध नाम है । योग विद्या के आचार्य समाधि अवस्था में पहुँच कर जब ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं, तो उन्हें प्रकृति के उच्च अन्तराल में ध्वनि होती हुई परिलक्षित होती है । जैसे घड़ियाल के चोट मार देने से वह बहुत देर तक झनझनाती रहती है, इसी प्रकार बार–बार एक ही कम्पन उन्हें सुनाई देते हैं । यह नाद ॐ ध्वनि से मिलता–जुलता है । उसे ही ऋषियों ने ईश्वर का स्वयं सिद्ध नाम बताया है और उसे "शब्द" कहा है ।

इस शब्द ब्रह्म से रूप बनता है । इस शब्द के कम्पन सीधे चलकर दाहिनी ओर मुड़ जाते हैं । शब्द अपने केन्द्र की धुरी पर भी घूमता है, इस प्रकार वह चारों तरफ घूमता रहता है । इस भ्रमण, कम्पन, गति और मोड़ के आधार पर स्वस्तिक बनता है, यह स्वस्तिक ॐकार का रूप है ।

ॐकार को प्रणव भी कहते हैं । यह सब मन्त्रों का हेतु है, क्योंकि इसी से समस्त शब्द और मंत्र बनते हैं । प्रणव से व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं और व्याहृतियों में से वेद का आविर्भाव हुआ ।

इसी का कुछ विवेचन नीचे है–

सर्वेषामेव मन्त्राणां कारणं प्रणवः स्मृतः ।
तस्मात् व्याहृतियोजातास्ताभ्यो वेद त्रयं तथा ॥

–वृद्धहारीति अ. ६/८८

अर्थ—ओंकार समस्त मन्त्रों का हेतु भूत है, ओंकार से व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं और व्याहृतियों से तीनों वेद उत्पन्न हुए ।

भूरित्येव हि ऋग्वेदो भुवः इति यजुस्तथा ।
स्वरिति सामवेदः स्यात् प्रणवों भूर्भुवः स्वः ॥

—वृद्धहारीति अ. ५/८९

भूः से ऋग्वेद, भुवः से यजुर्वेद, स्वः से सामवेद ।

सप्तव्याहृतिषु प्रोक्तः प्रणवोऽयं पुनः पुनः ।
सप्तनामपि लोकानां शक्ति ब्रह्म स्वरूपताम् ॥

—वह्वृच सं. मं. दीपिका

"यह ओंकार सातों व्याहृतियों में बारम्बार कहा गया है, अतः सप्त लोकों की ब्रह्मस्वरूपता का द्योतक है ।"

तत्र सर्व वेदानां सारमस्ति ।

"हे नचिकेता ! ॐ की साधना में ही समस्त वेदों का सार है ।"

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः ।
वेदत्रयान्निरहद् भूर्भुवः स्वरतीति च ॥

—मनु. अ. २/७६

"ब्रह्माजी ने अकार, उकार, मकार अर्थात् ॐ को और भूर्भुवः स्वः को तीन वेदों से निकाला था ।"

ओंकार विन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥

"योगी पुरुष अनुस्वार युक्त ओंकार का सदा ध्यान करते हैं, अतः समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले तथा मोक्षदायक ओंकार को हम नमस्कार करते हैं ।

ओंकार को अपनाने से ब्रह्म तत्वों की मात्रा अपने भीतर बढ़ती है । फलस्वरूप गुण—कर्म—स्वभाव में ब्राह्मी भावों की प्रधानता रहने लगती है । इस अभिवृद्धि के फलस्वरूप मनुष्य स्वर्ग, मोक्ष, अमरता, सिद्धि, मंगल, निर्भयता, आत्मदर्शन, ब्रह्मनिर्वाण, मनोजय, शिवत्व की ओर बढ़ता है । ईश्वर के इस स्वयं सिद्ध नाम का अवलम्बन ग्रहण

करके मनुष्य ईश्वर की ओर ही चल पड़ता है । रस्सी को पकड़ कर चढ़ने वाला वहीं जा पहुँचता है जहाँ पर रस्सी बँधी है । प्रणव ब्रह्म से सम्बद्ध है, इस सम्बन्ध के आधार पर साधक ब्राह्मी स्थिति तक पहुँच जाता है । नीचे के प्रमाणों में इन्हीं भावों का प्रतिपादन किया गया है ।

ॐ इति स्मरणेनैव ब्रह्मज्ञानं परावरम् ।
तदेकं मोक्षसिद्धिं च लभेतामृतमश्नुते ॥

"पुरुष, ॐ के स्मरण मात्र से ब्रह्मज्ञान की पराकाष्ठा, मोक्षता, अमरता की सिद्धि को प्राप्त कर लेता है ।"

ॐकारो चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्राह्मणः पुरा ।
कन्ठं भित्वा विनिर्यातो तस्मान्मांगलिकावुभौ ॥

—अनाध्याये शान्ति पाठात्

"ओंकार तथा "अथ" ये दोनों शब्द प्राचीन काल में ब्रह्माजी के कण्ठ से स्वतः निकले थे, इसलिए वे दोनों मंगलकारक कहे जाते हैं ।"

प्रणवे विनिस्य व्याहृतीषु च सप्तसु ।
त्रिपदायां च गायत्र्यां न भयं विद्यते क्वचित् ॥

"ओंकार में सप्त व्याहृतियों में तथा गायत्री के त्रिपद युक्त पुरुष को भय कहीं पर भी नहीं होता है ।"

अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः ।
ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः ॥

"ओंकार विषय रहित तथा विषय सहित, द्वैत भाव का नाशक एवं कल्याणकारी है । पुरुष उस ओंकार को जानकर मुनि हो जाता है ।

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

"ॐ" का अवलम्बन श्रेष्ठ है, "ॐ" का अवलम्बन ही परम है ।' 'ॐ" के अवलम्बन से मनुष्य ब्रह्म लोक में महानता प्राप्त करता है ।

युञ्जीत प्रणव चेत प्रणवो ब्रह्म निर्भयम् ।
प्रणवे नित्य युक्तस्य न भय विद्यते क्वचित् ॥

"ॐ" निर्भय ब्रह्म है अतः मन को प्रणव में युक्त करें । प्रणव में नित्य युक्त पुरुष को कहीं पर भी भय नहीं मिलता है ।"

बुद्धि तत्येन धीशून्यं मौन मे कान्तवासिना ।
दीर्घप्रणवच्चार्य मनो राज्यं विजीयते ॥

"ॐ" के निरन्तर जप से मौनी बुद्धि के कारण इधर-उधर भटकते हुए मन पर आधिपत्य प्राप्त कर लेता है ।"

ॐ इत्येकारक्षर: ध्यानात् विष्णुर्विष्णुत्वमाप्तवान् ।
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नः शिवतामभवत् शिवः ॥

ॐ इस एकाक्षर मन्त्र के ध्यान से विष्णु विष्णुत्व को, ब्रह्म ब्रह्मात्व को तथा शिव शिवत्व को प्राप्त हुए ।

ॐ स्मर ।

—यजुर्वेद अ. १५

"वेद भगवान का उपदेश है कि ॐ का स्मरण करो ।"

ॐ स्मरणात् कीर्तनाद्वापि श्रवणाच्च जपादपि ।
ब्रह्म तत्प्राप्यते नित्यमोमित्येतत्परायणः ॥

"ॐ के स्मरण, कीर्तन, श्रवण और जप से उस परब्रह्म को मनुष्य प्राप्त हो जाता है, अतः ॐ में परायण रहे ।"

तैलधारामिवाछिन्नं दीर्घ घण्टा-निनादवत् ।
उपास्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित् ॥

"निरन्तर गिरती तेल की धार के समान या घड़ी के शब्द के समान यथार्थता से सदा ॐ विचारधारा में जो निमग्न रहता है, वही वेदवेत्ता है ।"

प्रणव की श्रेष्ठता को ध्यान में रखते हुए आचार्यों ने समस्त कर्मों में ओंकार को प्राथमिकता देने का विचार किया है । यह मन्त्रों का सेतु है, इस पुल पर चढ़कर मन्त्र मार्ग को पार किया जा सकता है । बिना आधार के-नाव पुल आदि अवलम्बन के किसी बड़े जलाशय को पार करना जिस प्रकार सम्भव नहीं उसी प्रकार मन्त्रों की सफलता के लिए बिना प्रणव के सफलता मिलना दुस्तर है ।

इसीलिए आमतौर से सब मंत्रों में और विशेष रूप से गायत्री मंत्र में सर्व प्रथम प्रणव का उच्चारण आवश्यक माना जाता है ।

क्षारन्ति सर्वां चैव यो जुहोति यजति क्रियाः ।
अक्षरमक्षयं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥

"बिना ॐ के समस्त कर्म, यज्ञ, जप आदि निष्फल होते हैं, ॐ को अविनाशी, प्रजापति ब्रह्म जानना चाहिए ।"

प्रणवं मन्त्राणां सेतुः ।

"प्रणव मन्त्रों का पुल है अर्थात् मन्त्र पार करने के लिए प्रणव की आवश्यकता अपरित्याज्य है ।"

यदोंकारमकृत्वा किंचिदारम्यते तद्वजो भवति ।
तस्माद्वजभयाद्भीतओंकारं पूर्वमारभेदिति ॥

"बिना ओंकार का उच्चारण किए सभी कार्य वजवत् अर्थात् निष्फल हो जाते हैं अतः वज्र–भय से डर कर प्रथम ॐ का उच्चारण करे ।"

ॐ के उन्नीस अर्थ

ॐ शब्द आप्लृ "व्याप्तौ" और "अव रक्षते" धातु से सिद्ध होता है ।

"आप्लृ" धातु से विनिर्मित ॐ का अर्थ सर्वव्यापी होता है और 'अव" धातु से निर्मित ॐ का अर्थ संसार सागर से रक्षा करने वाला होता है ।

"अव" धातु से मन प्रत्यय होता है ।(अवनष्टिलोपः) इस उणादि के सूत्र से टि का लोप होता है । अव+म् ऐसी अवस्था में (ज्वत्वर०) इत्यादि कृदन्त के सूत्र से व का ऊठ होता है । अब+ऊ+म् ऐसी अवस्था हो जाती है तदन्तर आदगुणः सूत्र से गुण होकर ॐ सिद्ध होता है ।

इस ॐ को प्रणव भी कहते हैं ।

प्रणव प्रपूर्वक णु धातु से स्तुति अर्थ में सिद्ध होता है और इसका अर्थ जिसके द्वारा अभीष्ट देवता की स्तुति की जाय वह "प्रणव" होता है ।

"अव" धातु रक्षण, गति, कान्ति, तृप्ति, अवगम, प्रीति, प्रवेश, श्रवण, स्वाम्यर्थ, याचन, क्रिया, इच्छा, दीप्ति, वाप्ति, आलिंगन, हिंसा, दान, भोग, वृद्धि इत्यादि १९ अर्थों में हैं । अतः क्रमशः सभी प्रकार से ॐ का अर्थ नीचे दिया जाता है ।

(१) रक्षण–अवति संसार सागराद्रक्षति–संसार सागर से रक्षा करता है ।

(२) गति–अवति–सर्वं जानाति–सर्वकाल में समस्त वस्तुओं का यथार्थ ज्ञाता ।

(क) यति–अवति–संसार चक्रो यस्माद् गच्छति–सदा संसार चक्र को चलाने वाला ।

(ख) गति–अवति–सर्वत्र व्याप्नोति–व्यापक होने से समस्त स्थानों पर विद्यमान तथा सबको प्राप्त ।

(ग) गति–अवति–ज्ञानेन विश्वं प्रवर्तयितुं प्रयत्नं करोति–विश्व मर्यादा को ज्ञानपूर्वक चलाने के लिए सर्वत्र प्रयत्न का प्रसार करने वाला है ।

(३) कान्ति–अवति । अवति विश्वं प्रकाशयति–जो संसार को प्रकाशित करने वाला ।

(४) प्रीति–अवति–सर्वं प्रीणियत–आनन्द स्वरूप के कारण भक्तों को प्रसन्न करने वाला ।

(५) तृप्ति–अवति–भक्तान्तर्पयति–शान्त स्वरूप होने के कारण सदैव भक्तों को तृप्त करने वाला ।

(६) अवगम–अवति–अवगच्छति–समस्त प्राणियों के विचार को सर्वदा सर्वत्र जानने वाला ।

(७) प्रवेश–अवति–सूक्ष्मत्वात्प्रविशति–सूक्ष्म होने के कारण आत्म–स्वरूप से समस्त प्राणियों में जो प्रवेश करता है ।

(८) श्रवण–अवति–सर्वे शृणोति–स्वयं श्रोतृ इन्द्रिय का निर्माता होने के कारण सूक्ष्मता, स्थूल, गुप्त से गुप्त शब्दों का श्रोता ।

(९) स्वाम्यर्थ–अवति–अधिपत्य करोति–समस्त चराचर जगत् का स्वामी होने से शासन करने वाला ।

(१०) याचन–ऐश्वर्यों से युक्त होने के कारण सबकी याचना का स्थान ।

(११) इच्छा क्रिया–अवति–संसार चक्र चालयति–क्रियात्मक संसार का निर्माण होने से सांसारिक क्रियाओं का संचालक ।

(१२) इच्छति–अवति–स्वयं इच्छारहित होने पर भी जीवों की शुभकामनाओं का प्रकाशक ।

(१३) दीप्ति–अवति–दीप्यति–ज्ञान स्वरूप होने के कारण विद्या का तेज स्वरूप होने से अंधकार को नष्ट करने वाला ।

(१४) वांप्ति–अवति–प्रदर्शयति–अणु–अणु तथा अप्रतीत होने वाला एवं इन्द्रियातीत होने के कारण पवित्र अन्तःकरण में स्वरूप प्रदर्शक ।

(१५) आलिंगन–अवति–अलिंगयति–सर्वज्ञ व्याप्त व्यापक के भाव से सब का सम्बन्धी ।

(१६) हिंसा–अवति–हिंसति–सर्वदा वेद कथित मार्ग पर चलने वालों के अज्ञान का हिंसक अर्थात् नाश करने वाला ।

(१७) दान–अवति–ददाति–सृष्टि काल से ही सुखदायक पदार्थों तथा उनको उपयोग में लाने की बुद्धि को देने वाला ।

(१८) भोग–अवति–लीन करोति–प्रलय के समय स्थूल जगत् को अदृश्य अर्थात् अपने में लीन करने वाला ।

(१९) वृद्धि–अवित–वर्द्धयति–सृष्टि काल में सूक्ष्म प्रकृति को स्थूल पथ पर लाने वाला ।

यह ॐ अव्यय वाचक शब्द है । इसके सामने कोई भी प्रत्यय विभक्ति आते ही अपने आप नष्ट हो जाती है, अतः यह अविनाशी है । चूँकि यह वाचक शब्द अव्यय होता है, अतः यह शब्द परमात्मा के

अतिरिक्त किसी भी प्राणी में प्रयोजित नहीं हो सकता है क्योंकि प्राणी अल्पज्ञ एक स्थान पर रहने वाला पूर्णता रहित एवं न्यूनता सहित है ।

प्रणव के जो अर्थ हैं वे गुण भी हैं, प्रणव की उपासना करने से, उसका जप करने से उपर्युक्त १९ गुणों की प्राप्ति होती है । इसलिए इसका प्रत्येक मंत्र के आदि में उच्चारण किया जाता है । ओंकार को मन्त्रों का सेतु कहा गया है, उस पर चढ़कर ही मंत्रों की दुस्तरता को पार किया जाता है ।

गायत्री मंत्र में सबसे प्रथम ॐ को इसलिए नियोजित किया है कि इस शक्ति की धारा को इस पुल पर चढ़कर पार किया जा सके । ॐ जिन अर्थों का बोधक है उन अर्थों की, गुणों की, आदर्शों की स्फुरणा साधक की अन्तर्भूमि में होती है, फलस्वरूप आध्यात्मिक साधना का मार्ग सुगम हो जाता है । ॐ की शिक्षाऐं यदि साधक के मन पर जम जायें तो उसका कल्याण होने में देर नहीं लगती ।

ॐ शब्द ब्रह्म है । गायत्री ब्रह्म की ही महाशक्ति "ब्रह्म" है । नाद, बिन्दु और कला की त्रिपुटी प्रणव में सन्निहित है । त्रिपदा गायत्री के तीन चरणों में उस त्रिपुटी का जब सम्मिलन होता है तो अपार आनन्द की अनुभूति होती है । दक्षिणमार्गी और वाममार्गी अपने-अपने ढंग से इन आनन्दों का आस्वादन करते हैं ।

तीन व्याहृतियाँ (भूः भुवः स्वः)

गायत्री में ॐकार के पश्चात् भूः भुवः स्वः यह तीन व्याहृतियाँ आती हैं । इन तीनों व्याहृतियों का त्रिक् अनेकार्थ बोधक है, वे अनेक भावनाओं का अनेकों दिशाओं का संकेत करती हैं, अनेकों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं ।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश यह तीन उत्पादक, पोषक, संहारक शक्तियों का नाम भूः भुवः स्वः है । सत, रज, तम इन तीनों गुणों को भी त्रिविध गायत्री कहा है । भूः को ब्रह्मा, भुवः को प्रकृति और स्वः को जीव भी कहा जाता है । अग्नि, वायु सूर्य इन प्रधान देवताओं का प्रतिनिधित्व तीन

व्याहृतियाँ करती हैं । तीनों लोकों का भी इनमें संकेत है ।

इन त्रिकों पर ध्यान देने से हमें कई आवश्यक बातें सूझ पड़ती हैं, कई महत्वपूर्ण जानकारियों की प्राप्ति होती है । त्रिदेव रूपी परब्रह्म की शक्तियों का हमें ध्यान रखना है । उनके द्वारा पदार्थों को एक रूप में नहीं रहने दिया जाता । विश्व के सब पदार्थ प्रतिक्षण बदल रहे हैं । अपने से सम्बन्ध रखने वाले सब पदार्थ दिन–दिन परिवर्तित होते हैं । धन, यौवन अपने पास है, वह अस्थिर है । स्वजन, सम्बन्धी, उपवन, वाहन आदि भी आज जिस रूप में हैं भविष्य में उनकी स्थिति वैसी नहीं रहेगी । चरम परिवर्तन का नाम मृत्यु है । पदार्थों का परिवर्तन एवं नाश होना स्वाभाविक है, इसलिए उनसे मोह न करना चाहिए, केवल उनके सदुपयोग का ध्यान रखना चाहिए । इन सांसारिक पदार्थों में अपने को भुला न देना चाहिए वरन् उस आदि स्थिर, शाश्वत शक्ति से आत्मा का सम्बन्ध स्थापित रखना चाहिए ।

सत् रज, तम इन तीनों गुणों से संसार बना है । इन तीन स्वभावों के प्राणी और पदार्थ इस विश्व में रहते हैं । उनमें से हमारे लिए बहुत से उपयोगी और बहुत से अनुपयोगी होते हैं । बहुत लाभदायक और बहुत हानिकारक सिद्ध होते हैं । उनमें से हमें अनुपयोगिता से बचना और उपयोगिता को अपनाना है । क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर चलना है । तम से रज की ओर और रज से सत की ओर कदम बढ़ाना है ।

ब्रह्म, प्रकृति और जीव के आपसी सम्बन्धों को समझाते हुए अपना दृष्टिकोण और कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिए । ईश्वर का अंश जीव प्रकृति के उपवन में सैर करके अपना मनोरंजन करने के लिए आता है । जैसे यात्री लोग उपवन का सौन्दर्य निहारते हुए अपना मन सन्तुष्ट करते हैं और उपवन के पेड़ पौधे पर अपना–अपना आधिपत्य नहीं जमाते उसी प्रकार हमें भी संसार की वस्तुओं का सदुपयोग तो करना चाहिए पर अपनी मालिकी नहीं गाँठनी चाहिए अन्यथा उपवन का सौन्दर्य देखने का लाभ तो दूर रहा, उन वृक्षों को

काट कर कोयला बनाने और फिर उन्हें बेचकर तिजूरी भरने की चिन्ताऐं मस्तिष्क को घेर लेंगी । आज अधिकांश व्यक्ति इस सुर दुर्लभ मानव शरीर को पाकर भी, स्वर्गादपि गरीयसी भू माता की गोदी में खेलने का सौभाग्य पाकर भी, नारकीय अग्नि में झुलसते हुए दिखाई पड़ते हैं । इस भूल का मूल कारण वह दृष्टिकोण है जिसके अनुसार मनुष्य सृष्टि सौन्दर्य देखकर आनन्द लाभ करने की अपेक्षा स्वार्थपूर्ण हाय–हाय में फँसा हुआ दिखाई पड़ता है । यदि हमारी दृष्टि शुद्ध हो जाय, ईश्वर, जीव और प्रकृति के रहस्य को समझ जाय तो अत्यधिक धन सम्पदा प्राप्त होते हुए भी सर्व प्रकार से सुखमय जीवन बिताया जा सकता है ।

अग्नि, वायु और जल की उपासना का अर्थ है–तेजस्विता, गतिशीलता और शान्तिप्रियता का मन में स्थापित होना । इस पद्धति को अपनाकर, इस त्रिविध सम्पत्ति को अन्दर धारण करके, जीवन को सर्वांगीण सुख–शान्तिमय बनाया जा सकता है ।

इस प्रकार के अनेकों संकेत व्याहृतियों के त्रिक में भरे हुए हैं । उन संकेतों का सार हमें सत्य, प्रेम और न्याय ही प्रतीत होता है । नीचे दिय हुए प्रमाणों में व्याहृतियों के अन्तर्गत छिपे हुए कुछ संकेतों का परिचय प्राप्त कीजिए ।

विशेषेण आहृतिः सर्व विराट ।
प्राह्णानं प्रकाशोकरण व्याहृतिः ॥

–विष्णु स. भा.

विशेष रूप से आहृति अर्थात् समस्त विराट का बोध प्रकाश करने से व्याहृति नाम हुआ ।

भूर्भुवः स्वस्तथा पूर्व स्वयमेव स्वयम्भुवाः ।
व्याहृताज्ञानदेहेन तेन व्याहृतयाः स्मृताः॥

–यो. याज्ञ. अ. १ श्लोक ९

सृष्टि से पूर्व ब्रह्माजी ने स्वयं ज्ञान देह से भूर्भुवः स्वः कहा इसी कारण से व्याहृति नाम हुआ ।

भूर्भुवः स्वः ब्रह्म । भूर्भुवः स्वरापओऽम्

—महानारायण ८/१४/१

भुर्भुवः स्वः ब्रह्म रूप है, भूर्भुवः स्वः और जल ओंकार स्वरूप है ।

ब्रह्मसत्ता व्यतिरेकेण भूर्लोकादि ।
प्रपञ्चस्य पृथक सत्ताऽनगी कारात्तद्ब्रह्मैव ॥

—निर्णयकालावल्याख्य सं. भा.

ब्रह्म सत्ता के बिना मूर्लोकादि प्रपंच की सत्ता स्वीकार न करने से वह निःसंशय ब्रह्म है ।

प्रधानं पुरुषः कालो ब्रह्मविष्णुमहेश्वरः ।
सत्यं रजस्तमस्तिस्त्रः क्रमाद् व्याहृतयः स्मृता ॥

—कूर्मपुराणे उत्तर विभागे अ. १/१४ श्लोक ५४

प्रधान काल पुरुष ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सत्व, रज, तम, क्रम से ये व्याहृतियाँ कही गई हैं ।

भूर्विष्णुश्यं तथा लक्ष्मीर्भुवः इत्यभिधीयते ।
तयो र्योः स्वरिति जीवस्तु स्वः इत्यभिधीयते ॥

—वृद्धहारीति अ. ५/९१

भूः विष्णु भगवान् हैं तथा भुवः लक्ष्मी जो हैं उन दोनों का दास स्वः रूपी जीव है ।

अग्निर्वायु तथा सूर्यस्तेभ्यः एव हि जेनिरे ।
स एताः व्याहृतीयर्हुवाः सर्व वेदं जुहोति वै ॥

—वृद्धहारीति अ. ६/९१

अग्नि, वायु, सूर्य इन्हीं व्याहृतियों से उत्पन्न हुए है । जो व्याहृतियों से जप करता है वह समस्त वेदों के पाठ का फल प्राप्त करता है ।

भूरादयस्त्रयो लोकः आदरात्कथितं पुनः ।
एतत्सर्व ब्रह्मरूपमिति वक्तुं शिवस्यापि ॥

ब्रह्माजी ने पुनः भूर्भुवः स्वः आदि तीन लोक आदरपूर्वक कहे, अतः यह समस्त ब्रह्म स्वरूप है और इसी के कारण गायत्री आदि में

लगाये गये हैं ।

सारभूतश्च वेदानां गुह्योपनिषदः स्मृताः ।
ताभ्यः सारं तु गायत्र्या व्याहृतित्रयम् ॥

वेदों का सारभूत उपनिषद हैं । उपनिषदों का सार गायत्री, गायत्री का सार भूर्भुवः स्वः ये तीन व्याहृतियाँ हैं ।

तीन व्याहृतियाँ जिन तीन क्षेत्रों पर प्रकाश डालती हैं, वे तीनों ही बड़ी विचारणीय एवं ग्रहणीय हैं । ईश्वर, जीव प्रकृति के गुन्थन की गुत्थी को व्याहृतियां ही सुलझती हैं । भूः लोक, भुवः लोक और स्वः लोक यद्यपि लोक विशेष भी हैं परन्तु अन्तःकरण, शरीर और संसार यह तीन क्षेत्र भी सूक्ष्म लोक हैं जिनमें स्वर्ग एवं नरक की रचना मनुष्य अपने आप करता है । सत्, रज, तम तीनों गुणों से जीव बँधा हुआ है । इन तीनों का ठीक प्रकार उपयोग हो तो यह बंधन न रहकर मुक्ति के सहायक एवं आनंद के उपकरण बन जाते हैं । ब्रह्मा, विष्णु और महेश का निर्माण पोषण एवं संहारकारिणी शक्तियों का तत्वज्ञान एवं उपयोग व्याहृतियों में मौजूद है ।

एक ॐ की तीन संतान हैं । (१) भूः (२) भुवः (३) स्वः । इन तीनों व्याहृतियों से त्रिपदी गायत्री का एक–एक चरण बना है । उसके एक–एक चरण में तीन पद हैं । इस प्रकार यह त्रिगुणित सूक्ष्म परम्पराऐं चलती हैं । इनके रहस्यों को जानकर तत्वज्ञानी लोग निर्वाण के अधिकारी बनते हैं ।

'तत्' शब्द का विवेचन

तत् कहते हैं "उस" या "वह" को । तत् शब्द किसी की ओर संकेत करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है । गायत्री में यह शब्द परमात्मा को संकेत करता है । परमात्मा की ओर ध्यान आकर्षित करता है ।

केवल संकेत मात्र इसलिए किया गया है कि परमात्मा के विषय में जितना जो वर्णन किया जाता है वह पूर्ण नहीं वरन् सर्वथा अपूर्ण है । कोई भी परमात्मा का वर्णन चाहे वह कितने ही विस्तार से क्यों न किया हो अपूर्ण ही रहेगा, क्योंकि उसकी महिमा मानव बुद्धि की सीमा से बाहर है, यह सब वर्णन केवल मात्र परमात्मा की ओर एक संकेत मात्र है, जैसे उँगली का इशारा करके किसी दूरस्थ वस्तु को दिखाते हैं कि देखो वह वस्तु कहाँ है ? उस वस्तु को देखना उस देखने वाले की आँखों पर, नेत्र ज्योति पर निर्भर है । उँगली के इशारे से तो एक दिशा का ज्ञान कराया जाता है कि वह वस्तु इस दिशा में है । गायत्री के आरम्भिक पद में उस मर्यादा का ध्यान रखा गया है । ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करने की अपेक्षा केवल संकेत मात्र किया गया है कि "उस" परमात्मा को देखो । वह परमात्मा कैसा है उसका ज्ञान शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श की पञ्चभौतिक तन्मात्राओं से नहीं वरन् देखने वालों की अन्तरात्मा द्वारा ही हो सकता है । आत्मा जब परमात्मा के समीप पहुँचता है तभी उसे उसका रूप प्रतीत होता है । भाषा और लिपि की असमर्थता को, सीमितता को ध्यान में रखते हुए गायत्री ने परमात्मा को "तत्" शब्द से अँगुली निर्देश किया है । जिसे आवश्यकता होगी, जो उसका महत्व समझेगा वह स्वयं उसका स्वरूप जानने का प्रयत्न करेगा और उसे प्राप्त कर लेगा।

नीचे के प्रमाणों में "तत्" शब्द ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है । इससे जाना जा सकता है कि यहाँ "तत्" शब्द का संकेत ईश्वर की ओर है–

तच्छब्देन प्रत्यग्भूतं स्वतः सिद्धं परं ब्रह्मोच्यते ।

–शंकर भाष्य

"तत्" शब्द से प्रत्यक्ष तथा स्वतः सिद्ध ब्रह्म कहा जाता है ।

तदति अव्ययं परोक्षार्थे ।

–संध्या भाष्य

"तत्" शब्द परोक्षार्थ में अव्ययवाची है । परोक्षार्थ उसे कहते हैं, जो दृष्टिगोचर न हो ।

तच्छब्दः स्वबुद्धिभेदकृतः अतिदूरतमे
अत्युत्कर्षाख्येऽर्थे वर्तते ।

–विष्णु भाष्य

'तत्" शब्द बुद्धिकृत अर्थ से अति दूर और अति श्रेष्ठ अर्थ वाला है ।

ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मस्त्रिविध स्मृतः ।

–गीता अ. १७/३

"ॐ तत् सत्" ये तीन ब्रह्म नाम परब्रह्म के कहे गये हैं अतः तत् ब्रह्मस्वरूप है ।

तत्, तस्य सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य ।

"तत्" उसका नाम है, जो समस्त श्रुतियों में प्रसिद्ध है ।

तदित्यनभिसन्ध्याय फलं यज्ञ तपः क्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥

यज्ञ, तप, दान इत्यादिक क्रियाओं के फल की आशा से रहित हो "तत्" पदार्थ परमात्मा को लक्ष्य करके मुमुक्षुगण कार्य करते हैं ।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणः ।
गच्छत्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिधूर्त कल्मषाः ॥

–गीता अ. ५/१७

"तत्"अर्थात् इस परमात्मा के रूप में जिसकी बुद्धि, आत्मा, प्रतिष्ठा और परायणता है वह ज्ञान द्वारा पाप रहित हुआ मनुष्य परम गति को प्राप्त होता है ।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञान ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥

—गीता अ. ४/३४

"तत्" अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान का, प्रणाम, प्रश्न तथा सेवा द्वारा ज्ञान । वे ज्ञानीजन तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे ।

गायत्री मंत्र "तत्" शब्द से प्रारम्भ होता है । इस प्रारम्भिक शब्द में ईश्वर की ओर संकेत किया गया है, ताकि इस परब्रह्म परमात्मा की सर्वव्यापकता को ध्यान में रखकर साधक उसी प्रकार बुराइयों से बचे जैसे पुलिस को सामने खड़ा देखकर चोर को भी दुष्कर्म करने का साहस नहीं होता । उस परमात्मा को इसलिए भी याद रखना आवश्यक है कि प्रत्येक जड़ चेतन के साथ सद्भावनापूर्ण व्यवहार करने का साधक को ध्यान रहे । तत् (उस) परमात्मा की ओर गायत्री के प्रथम पद में इसलिए संकेत किया है ।

"सवितुः" शब्द का रहस्य

सविता शब्द से साधारणतः सूर्य का अर्थ प्रकट होता है, क्योंकि वह प्रत्यक्षतः तेजस्वी और प्रकाशवान् है । परमात्मा की वह अप्रत्यक्ष शक्ति जो तेज के रूप में हमारे स्थूल नेत्रों के सामने आती है वह सूर्य है, इसलिए स्थूल अर्थों में इस सूर्य नामक ग्रह को सविता कहते हैं परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि यह चमकने वाला अग्नि पिण्ड ही पूर्ण सविता नहीं है ।

आध्यात्मिक भाषा में सविता कहते हैं तेजस्वी को, प्रकाशवान को, उत्पन्न करने वाले को । परमात्मा की अनन्त शक्तियाँ हैं, उसके अनेक रूप हैं । उनमें तेजस्वी शक्तियों को सविता कहा जाता है ।

परमात्मा की जिस शक्ति से हमें प्रयोजन होता है, जिसको अपनी ओर आकर्षित करना होता है, उसका ध्यान, स्मरण या जप किया जाता है । पूजा उपादानों के द्वारा उस शक्ति को अपने अभिमुख

बनाया जाता है । रेडियो की सुई को जिस नम्बर पर घुमा दिया जाता है, उस नम्बर के मीटर वालों से उस रेडियो का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है ओर उसमें चलने वाली शब्द लहरी सुनाई पड़ने लगती है । इस विज्ञान को ध्यान में रखते हुए उपासना के लिए ऐसा नियम बनाया गया है कि अनन्त शक्तियों के भण्डार ईश्वर की जिन शक्तियों से लाभ उठाना होता है उसका ध्यान करते हैं ।

गायत्री में सविता का ध्यान किया जाता है । सविता तेजस्वी है इसलिए साधक उससे तेजस्विता की आशा करता है, आत्मिक तेज, बौद्धिक तेज, आर्थिक तेज, शारीरिक तेज इन सब तेजों से सम्पन्न बनने से मनुष्य का जीवन सर्वांगपूर्ण तेजयुक्त बनता है । ईश्वर की तेज शक्ति को धारण करके हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जाज्वल्यमान नक्षत्र की तरह चमकें । इसलिए ईश्वर के सविता नाम का गायत्री में स्मरण किया गया है ।

सविता शब्द की परिभाषा नीचे के प्रमाणों में देखिए–

सविता वै प्रसवनामीशे ।

—कृष्ण यजुर्वेद

निश्चय ही समस्त सृष्टि का ईश्वर सविता है ।

सविता सर्वभूतानां सर्वं भावश्च सूयते ।
स्रजनात्प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते ॥

—वृ. यो. या. अ. ९/५५

सविता प्राणियों को उत्पन्न करने वाला है और सर्व भावों का उत्पादक है । उत्पन्न करने से तथा प्रेरक होने से सविता नाम कहा गया है ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावित्येव पुरुषज्ञः सोऽसावहम् ॥

—मैत्र्युप. ६/३५

तेजोमय मण्डल द्वारा सत्य स्वरूप परमात्मा का मुख ढँका है वह ढँकने वाला सूर्य मण्डल मैं ही हूँ ।

आदित्यमण्डले ध्यायेत्परमात्मनम् अयम् ।

—शौनकः

सूर्य मण्डल में अविनाशी परमात्मा का ध्यान करे ।

सूर्याद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्ये सोऽहमेव च ॥

—सूर्योप.

"सूर्य से समस्त सृष्टि उत्पन्न होती है, सूर्य ही पालन करता है और सूर्य में ही लय को प्राप्त हो जाती है । अतः सूर्य स्वरूप मैं ही हूँ ।

तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यम् ।

श्वेताश्वतर ४/१८

नत्वा सूर्य परं धाम ऋग्यजुः सामरूपिणम् ।
प्रज्ञानायाखिलेशाय सप्ताश्वाय त्रिमूर्तये ॥
नमो व्याहृतिरूपाय त्वमोंकारः सदैव हि ।
त्वामृते परमात्मानं न तत्पश्यामि देवम् ॥

—सूर्य पु. अ. १/१४/३३/३

"ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद स्वरूप परम तेजस्वी सप्त घोड़ों के रथ पर चलने वाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव ज्ञान स्वरूप हैं । आप से बढ़कर अन्य कोइ देवता नहीं दीखता ।

चन्द्रमा सविता प्राण एव सविता विद्युदेव सविता ।

—गोपथ ब्रा. पूर्व भाग ६/७/९

"चन्द्रमा सूर्य देव है, प्राण ही सूर्य है, विद्युत ही सूर्य है ।

एष हि खल्वात्मा, सविता ।

—मैत्र्युप. ६/८

"निःसंशय सूर्य देव ही समस्त प्राणियों की आत्मा है ।

सवितुरिति सृष्टि स्थिति लय लक्षणकस्य सर्व ।
प्रपंचस्य समस्तद्वैत विभ्रमस्याधिष्ठानं लक्ष्यते ॥

—शंकर भाष्य उव्वट. वि.

प्रपंचमय जगत की उत्पत्ति, पालन एवं विनाश का हेतु, समस्त द्वैत विभ्रम का स्थानभूत सविता है ।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवंति । यत्प्रत्यभिसंविशन्ति तद्विज्ञात्वातद्ब्रह्मेति ॥

—तैत्तरीय भू. च. अ.

"जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिससे पालित होते हैं और जिसमें प्रवेश कर जाते हैं वह ब्रह्म है । अतः उसको तू पहचान ।"

संरक्षिता च भूतानां सविता च ततः सविता स्मृताः ।

—वृ. यो. याज्ञ १/९१

समस्त प्राणियों की रक्षा करने से सविता नाम हुआ ।

सूते सकल श्रेयांसि धातृणां इति सविता—

—संध्या भाष्य

"ध्यान करने वालों के समस्त कल्याणकर्त्ताओं को सविता कहते हैं ।

य एषोरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो दृश्यते ।
हिरण्यश्मश्रु हिरण्यके आप्राखात्सर्वं एव सुवर्ण ॥

—छांदो. १/६६

सूर्य मण्डल में सोने की दाढ़ी मूँछ तथा सोने के केश वाला जो तेजोमय पुरुष दीखता है वह पैर के नख से लेकर शिखा तक तेजोमय है ।

देवोऽयं भगवान्भानुरन्तर्यामी सनातनः ।

—सूर्य प. अ. १/११

भगवान सूर्य देव अन्तर्यामी तथा सनातन देव हैं ।

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुसे जगत्प्रसूतिस्थिति नाथ हेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारणे विरंचिनारायण शंकरात्मने ॥

—भविष्य पु.

"संसार के एक नेत्र जगत् की उत्पत्ति, पालन, संहार के कारण

भूत, वेदत्रयीमय, त्रिगुणात्मक, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर स्वरूप आदित्य भगवान को नमस्कार है ।

सूते सकल जन दु:ख निवृत्तिं हेतुवृष्टिं जनयति सविता ।

—संध्या भाष्य

समस्त प्राणियों के दु:ख नाश करने को जो वृष्टि करे उसे सविता कहते हैं ।

आदित्याज्जायते वृष्टिं वृष्टेरन्नं तत: प्रजा: ।

"आदित्य से वर्षा, वर्षा से अन्न और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है ।"

याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभि: पर्जन्यो भवति ।

सूर्यदेव जिन किरणों से तपते हैं उन्हीं किरणों से वृष्टि करते हैं ।

ऐष: भूतात्मको देव: सूक्ष्मोऽव्यक्त: सनातन: ।
ईश्वरीय: सर्वभूतानां परमेष्ठी प्रजापति: ॥

—भविष्य पु.

यह सूर्यदेव भूतात्मादेव सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन, प्राणियों के ईश्वर, प्रजापति परमेष्ठी ब्रह्मा हैं ।

यन्मण्डलं ज्ञानघनत्वगम्यं त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्म रूपम् ।
समस्त तेजोमयदिव्यरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥

ज्ञानघन, अगम्य, त्रैलोक्य में पूजनीय, त्रिगुणात्मक, समस्त तेजमय, दिव्यरूपी सूर्य मण्डल का वर्णनीय तेज हमको पवित्र करे ।

असौ वै देव: सवितेति ।

—शतपथ ब्राह्मण

यह सूर्यदेव निश्चय ही ब्रह्मदेव हैं ।

सविता वै सर्वस्य प्रसविता प्रसविता अग्नि: ।
सवितारम् सर्वस्य प्रसवितारम् ॥

—निरुक्ते दैवत काण्डे अ. ७ पा. ९

सविता देव निश्चय ही सर्व भूतों के उत्पत्ति कारक हैं, सविता

अग्नि को कहते हैं, अग्नि ही समस्त प्राणियों को उत्पन्न करता है ।

षुञ–प्राणिप्रसवे इत्यस्य धातारेतवूपम् ।
सुनोति सूयते वा उत्पादयति चराचरं जगतम् ।
सविता सूर्यमण्डलान्तर्गत पुरुष ईश्वर ॥

–भारद्वाज भाष्य. रा.

सविता यह रूप प्राणी उत्पन्न करने के अर्थ में पुत्र धातु से बना है । जो बराबर जगत को उत्पन्न करता है उसका नाम सविता है और सविता देव सूर्य मण्डल के अन्तर्गत जो पुरुष है वह ईश्वर है ।

सवनात् सविता

–मैत्र्युपनिषद ६/३५

जगत् का पालन करने से सविता नाम हुआ ।

षु–प्रसवैश्वर्ययो:, सर्ववस्तूनाम् प्रसव
उत्पत्ति स्थानं सर्वेश्वर्यस्य च ॥

–महीधर भाष्य

उत्पत्ति और ऐश्वर्य अर्थ में 'षु' धातु से सविता बनता है । इस कारण समस्त वस्तुओं की उत्पत्ति तथा ऐश्वर्य का स्थान सविता है ।

सू–तृचृ–जगसृष्टिरि परमेश्वरे ।

जगत् का सृष्टा अर्थात् परमेश्वर अर्थ में सविता सू धातु से तृच् प्रत्यय होकर बनता है ।

सु–प्रेरणे सुवति स्व स्व व्यापारे प्रेरयति ।
य: सविता प्रेरकान्तर्यामि विज्ञानानन्द स्वभावो
हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्न: ।

–महीधर भाष्य

प्रेरणा अर्थ 'षु' धातु से सविता बनता है इस कारण जो प्राणियों को अपने–अपने व्यापार में लगाता है वह सविता है और वह सविता अन्तर्यामी, विज्ञान, आनन्द स्वरूप, हिरण्यगर्भ तथा समाधि में व्यापक है ।

वह्निर्नारायणः साक्षात्नारायण ! नमोस्तुते ।

—नारायण भाष्य

अग्नि साक्षात् नारायण है (अग्नि) अतः अग्नि स्वरूप नारायण को नमस्कार है ।

अग्न्यादिरूपी विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीयते ।
तत्पदं परमं विष्णोर्देवस्य सवितः स्मृतम् ॥

—अग्नि पुराण अ. २१/६१५

अग्नि स्वरूप विष्णु वेद के प्रारम्भ में ब्रह्म स्वरूप गाये गये हैं, वे ही विष्णु भगवान् सविता के परम पद कहे गये हैं ।

हृदयाकाशे तु यो जीवः साधकैरुपगीयते ।
स एवादित्यरूपेण वह्निर्नभसि राजते ॥

—व्यास

साधकों द्वारा हृदय में वर्तमान जिस जीव (भगवान) का ध्यान किया जाता है वही सूर्य रूप से बाहर प्रकाश में विद्यमान है ।

वरेण्यं का सन्देश

वरेण्य कहते हैं श्रेष्ठ को वरण करने को, ग्रहण करने को, धारण करने योग्य को । ईश्वरीय सत्ता में सभी तत्व हैं जो मनुष्य के लिए उपयोगी हैं वह भी और जो अनुपयोगी हैं वह भी । इनमें से गायत्री द्वारा हम उन तत्वों को ग्रहण करते हैं जो वरेण्य हैं, श्रेष्ठ हैं, ग्रहण करने योग्य हैं ।

धर्म, कर्त्तव्य, अध्यात्म, सत्, चित्, आनन्द, सत्य, शिव, सुन्दर की ओर जो तत्व हमें अग्रसर करते हैं वे वरेण्य हैं । श्रेष्ठता को अपने अन्दर धारण करने से, श्रेष्ठता की ओर अभिमुख होने से हमारी ईश्वर प्रदत्त श्रेष्ठता जाग पड़ती है और इस संसार में भरे हुए नानाविध पदार्थों में से केवल श्रेष्ठता को ही अपने लिए चुनते हैं । बाग में गन्दगी से लेकर मनोहर पुष्पों तक सभी पदार्थ होते हैं । मक्खी बाग

में घुसते ही गन्दगी खोजने लगती है, कहीं न कहीं से अपनी अभीष्ट वस्तु गन्दगी खोज ही लेती है । वह गन्दगी का स्वाद लेती हुई प्रसन्न होती है । जब कोई मधुमक्खी उस बाग में जाती है तो गन्दगी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती और मनोहर पुष्पों में से पराग इकट्ठा करती है । कोकिल उस बाग पर मुग्ध हो जाती है और उसकी हृदय निर्झरिणी में से कविता का स्रोत फूट पड़ता है । दूसरी ओर चमगादड़ जब उस बाग में घुसती है तो उसके उत्तम-उत्तम फल-फूलों को कुतर-कुतर कर जमीन पर ढेर लगा देती है और उस बगीचे को कुरूप बना देती है । यह सब रुचि विचित्रता है । यह चारों प्राणी मक्खी, मधुमक्खी, कोयल और चमगादड़ अपने-अपने भाव के अनुसार क्रिया प्रकट करते हैं । जिनके भीतर जो है, वही उसकी क्रिया में प्रकट होता है । बाग एक ही है पर इन चारों को वह अपने-अपने ढंग से प्रिय होता है ।

जब हम वरेण्य कहते हैं, श्रेष्ठ को खोजते हैं, सत्य की ओर अभिमुख होते हैं तो संसार के विविध क्षेत्रों में से हमें वही अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं । हंस के सामने जब दूध और पानी मिलाकर रखा जाता है तो वह केवल दूध को लेता है, पानी को त्याग देता है, इसी प्रकार जब हमारा दृष्टिकोण वरेण्यम होता है तो ऐसी हंस-दृष्टि प्राप्त होती है जिसके द्वारा सर्वत्र उत्तम वस्तुऐं दिखाई पड़ती हैं सब की उपयोगिता प्रतीत होती है, सबका एक श्रेष्ठ उद्देश्य दृष्टिगोचर होता है । ऐसा मालूम पड़ता है कि सबके अन्दर एक श्रेष्ठता विराजमान है । परमात्मा की श्रेष्ठ सत्ता चारों ओर किलोलें कर रही है ।

जिन्हें हम बुरी वस्तु मानते हैं, जिस बात को हम अप्रिय समझते हैं उनमें हमारी जागरूकता को, चेतना को, विवेक बुद्धि को जाग्रत करने की शक्ति होती है, उससे अुनभव बढ़ता है और समझदारी आती है । यदि बुरी बातें दुनियाँ में न हों तो अच्छी की श्रेष्ठता अनुभव करने का अवसर लोगों को न मिले और निष्क्रियता एवं जड़ता बढ़ने लगे । इस प्रकार जब हम गम्भीरता पूर्वक विचार करते हैं तो हमें

बुराई के गर्भ में भी श्रेष्ठता प्रतीत होती है, उसके कारण हमारी अच्छाइयों को विकसित होने का, संघर्ष में आने का अवसर मिलता है । इस प्रकार वह बुराई भी हमारी श्रेष्ठता को बढ़ाने का हेतु बनती है ।

ईश्वर और वरेण्य सत्ता को गायत्री में अभिमन्त्रित किया गया है, ताकि साधक का दृष्टिकोण श्रेष्ठ बने, उसे अपनी श्रेष्ठता की अपने चारों ओर झाँकी हो और प्रत्येक परिस्थिति में श्रेष्ठता का स्वर्गीय अनुभव हो ।

वरेण्य का जो अर्थ है उसकी झाँकी नीचे के प्रमाणों में देखिए–

वृणुतेवरणार्थत्वाज्जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितम् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमेकं सत्यं तद्धीमहीश्वरम् ॥

–अग्नि पु. २१२/५

वृणुते अर्थात् वरणार्थ होने से जाग्रत स्वप्न आदि से रहित नित्य शुद्ध–बुद्ध एक सत्य रूप उस ईश्वर का ध्यान करता हूँ ।

वरेण्यं वरणीयश्च संसार–भय–भीरुभिः ।
आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वा मुमुक्षुभिः ॥

–यो. या. ९/५६/५७

ससार के भय से भयभीत तथा मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष से सूर्य मण्डल के अन्दर जो भर्ग नाम का तेज है, वह प्रार्थनीय है ।

वरणीयं प्रार्थनीयम् जन्ममृत्युदुःखादीनां
नाशाय ध्यानेनोपासनीयम् ॥

–सायण भा. भारद्वाज, रावण, महीधर.

वरणीय अर्थात् प्रार्थना करने के योग्य, जन्म–मृत्यु आदि दुःखों के विनाशार्थ ध्यान द्वारा उपासनीय है ।

(एन्य) प्राधाने प्रार्थनीये च यवद्धरं वर्तन्तु
अर्हम् अतिश्रेष्ठ तद्वरेण्यम् ॥

–वाचस्पत्ये

वृज् धातु से एण्य प्रत्यय प्रार्थना अर्थ में होती है । अत. वरेण्यं

का अर्थ वर्णन करने योग्य तथा अति श्रेष्ठ है ।

वरेण्यं आश्रमणीयम् ॥

–विद्यारण्य.

वरेण्यं अर्थात् आश्रय लेने के योग्य है ।

वरणीयमभेद्यमित्यर्थः ।

–वि. स. भा.

वरणीय अर्थात् अभेद ज्ञान से जानने योग्य है ।

सर्वं वरणीयम् निरतिशयानन्दम् ।

–शंकर भा.

जिससे समस्त रूप निम्न है ऐसा परमानन्द स्वरूप सर्व प्राणियों से प्रार्थनीय हे ।

वरेण्यं सर्वतेजोभ्यो श्रेष्ठ वै परमं पदम् ।
स्वर्गापवर्गकामैर्वा वरणीयं सदैव हि ॥

–अग्नि पु. अ. २१६/५

समस्त तेजों में श्रेष्ठ तथा वर्णन करने योग्य परमपद स्वर्ग तथा अपवर्ग के इच्छुक से सदेव प्रार्थनीय है ।

वरेण्यं सेव्यम् ।

–खण्डराज दी. सं. भा.

वरेण्यं अर्थात् सेवा करने योग्य है ।

भर्ग शब्द का अर्थ

बुराइयों का, अज्ञानान्धकार का नाश करने वाली परमात्मा की शक्ति "भर्ग" कहलाती है । इस शक्ति की भी हमें उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि वरेण्य की । हमें श्रेष्ठता को देखना है परन्तु बुराई की ओर से आँखों को बन्द नहीं कर लेना है, क्योंकि बुराइयों का आकर्षण अच्छाइयों की अपेक्षा अधिक चमकदार होता है, अतः बुराइयों का आक्रमण भी बड़ी तेजी एवं दृढ़ता से, बड़े बल

पूर्वक होता है । इसलिए देखा जाता है निर्बल शक्ति वाले व्यक्ति प्रायः बड़ी आसानी से बुराइयों का प्रलोभन सामने आते ही फिसल पड़ते हैं और उसके चंगुल में फँस जाते हैं ।

सत् और असत् दो तत्व प्रधान हैं । एक ओर दैवी, दूसरी ओर आसुरी शक्तियाँ भी इस संसार में काम करती हैं । यह देवासुर संग्राम सदा जारी रहता है । इसमें देव पक्ष का समर्थन करने के लिए, उसकी सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि असुर पक्ष का विरोध किया जाए, उसे नष्ट किया जाय, उससे बचा जाय और सावधान रहा जाय । खेत को पशु और पक्षियों से न रखाया जाय तो वे उसे खा जायें । आसुरी शक्तियों से न बचा जाय, उनका प्रतिरोध न किया जाय तो वे शक्तियों पर कब्जा करती जाती हैं । बुराई छोटी है, यह समझकर यदि उसकी उपेक्षा की जाय तो वह क्षय रोग की तरह उस उपेक्षा से उठकर चुपके–चुपके अपना कब्जा जमाती है और एक दिन उसका पूरा आधिपत्य हो जाता है ।

इसलिए असत् का, आसुरी वृत्तियों का, नित्य निरीक्षण करना उनका नित्य दमन करना आवश्यक है । शरीर पर मैल नित्य जमता है यदि उसे नित्य साफ न किया जाय, पैदा होने वाले दोष और दुर्गुणों का भली प्रकार निरीक्षण करके उन्हें दूर न किया जाय तो वे भी अपनी श्रेष्ठता के ऊपर आक्रमण करने का प्रयत्न करेंगे ।

अन्य सब आवश्यक कार्यों की तरह यह भी आवश्यक है कि हम अपने दुरितों का नाश करें । अपने चारों ओर फैली हुई कुवृत्तियों से लड़ें । गीता में अर्जुन को "सदा युद्ध में रत रहने का उपदेश दिया गया है, यह सतत् युद्ध नीच वृत्तियों के विरुद्ध जारी रहना चाहिए, यह आर्य सिद्धान्त हमें पुण्य सम्पादन की भाँति पाप नाश करने की ओर भी प्रोत्साहित करता है ।

गायत्री में उस ईश्वर का तेजस्वी और श्रेष्ठ अंश अपने में धारण करने के साथ–साथ यह भी आदेश छिपा हुआ है कि हम भर्ग को अपने में धारण कर बुराइयों, पापों, दुर्बलताओं, कुप्रवृत्तियों से

सावधान रहें और उन्हें नष्ट करने के लिए सदा धर्म युद्ध करते रहें । इसी भावना को, भर्ग शब्द को निम्नलिखित अर्थों में प्रकट किया गया है ।

सवितास्वात्मभूतस्तु वरेण्यं सर्व जन्तुभिः ।
भजनीयं द्विजा भर्गः तेजश्चैतन्य लक्षणम् ॥

—स्कन्द पुराण सूत संहिता यो

हे द्विजो ! सविता देव आत्मरूप तथा सर्व जन्तुओं से प्रार्थनीय चैतन्य रूपी तेज तुम्हारे द्वारा भजनीय है ।

भ्रस्ज घञ् आदित्यान्तर्गते ऐश्वर्य तेजसि ।

—सायण भाष्य

भ्रज धातु स घञ प्रत्यय सूर्य मण्डल के अन्तर्गत विद्यमान ईश्वरीय तेज में होती है ।

भाभिर्गतिरस्यहीति भर्गो भर्जयतीति वै स भर्गः ।

—मैत्र्युप. ६/७

भा धातु गति अर्थ में है अतः जो किरणों द्वारा गति अर्थात् प्रवेश इत्यादि हो वह भर्ग है अथवा जो संसार का नाश करे वह भर्ग है ।

भ्राजते च यदा भर्गः पूर्णरूपाच्च पूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वभावस्तु आत्मा तेन निगद्यते ॥

—व्यासः

प्रकाश स्वरूप होने से भर्ग नाम है, परिपूर्ण होने से पुरुष है, सर्व रूप से आत्मा कहा गया है ।

हृदयोऽग्नि तपते ह्येष बाह्ये सूर्यस्य चान्तरे ।
अग्नौ ह्यधूमके ह्येष ज्योतिश्चित्र तरंगवत् ॥

—आंगिरसः

यह भर्ग हृदयाकाश में तथा बाहर सूर्य मण्डल में विद्यमान है और वह यह अनेक प्रकार की तरंगों के सदृश धुएँ रहित अग्नि में विद्यमान रहता है ।

कालाग्निरूपमास्ययाय सप्तार्चिः सप्तरश्मिभिः ।
भ्राजते स्वेन रूपेण तस्माद् भर्ग इति स्मृतः ॥

–औशनसः

कालाग्नि रूप में विद्यमान होकर सप्त स्फुल्लिंग वाला अग्नि रूप होता है और सप्त किरणों द्वारा अपने रूप से प्रकाशित होने से भर्ग कहा गया है ।

सर्वस्यैवोपरिष्टस्य पूरणात्पुरुषः स्मृतः ।
भवभीत्यन्धकारेभ्यः शंकरोति ततः शिवः ॥

–वार्हस्पत्यः ।

यही भर्ग सबसे श्रेष्ठ तथा परिपूर्ण होने से पुरुष कहा गया है । यह भर्ग संसार से भयभीत पुरुषों का कल्याण करता है अतः शिव स्वरूप कहा गया है ।

वीर्यो वै भर्गः ।

–शतपथ ब्रा. ५/४५/१

निःसंशय बल भर्ग रूप है ।

पापानां तापकं तेजो मण्डलं ।

–सायण भाष्य

पापों का नाश करने वाला सूर्य मण्डल का तेज है ।

भञ्जो–आमर्दने भृजो भर्जन इत्येतयोर्धात्वोत्भर्गः ।
भजतां पापं –भञ्जन–हेतुभूतमित्यर्थः ।
भ्रजृ दीप्तावित्यस्य धातोर्वाभर्गः तेज इत्यर्थः ॥

–भारद्वाज.

भंज धातु आमर्दन अर्थात् नाशन अर्थ में है और भृज धातु भर्जन–भृजने अर्थात् नाश करने में है । अतः इन दोनों धातुओं से निर्मित भर्ग का भजन करने वालों के पापों को नाश करने वाला है । भ्राज धातु से निर्मित भर्ग का दीप्ति अर्थ है ।

अविद्या दोष भर्जनात्मक ज्ञानैकविषयत्वम् ।

–शंकर महीधर.

अविद्या जनित दोषों को नाश करने वाला तथा एकमात्र केवल ज्ञानस्वरूप है ।

भञ्जन्ति पापानि संसारजन्ममरणादि
दु:खमूलानि येन असौ भर्ग: । —सं. आ.

संसार के जन्म–मृत्यु आदि दु:खों के मूलभूत पापों को जो नाश करता है, भर्ग है ।

भर्गोऽविद्यातत्कार्ययोर्भर्जनाद्भर्ग: ।
स्वयंज्योति: परब्रह्मात्मकं तेज: ॥

—सायन. विद्यारण्य. भट्टोजी दीक्षित

अविद्या और उसके कार्यों को नाश करने से भर्ग है । वह स्वयं ज्योति परब्रह्म तेज है ।

भर्गस्तेज:—प्रकाश: प्रकाशो ज्ञानम्
यन्निरूपद्रवं निष्पापं निर्गुणं शुद्धं सकलदोष—
रहितं पक्कं परमार्थविज्ञानं स्वरूपं तद्भर्ग: ।

—निरुक्ते तारानाथ.

भर्ग—तेज है । प्रकाशवान है । जो उपद्रव रहित, पाप रहित, निर्गुण, शुद्ध, सकल दोषों से रहित, परिपक्व , परमार्थ, ज्ञानस्वरूप है, वही भर्ग है ।

प्रकाशप्रदानेन जगतो बाह्यम्यन्तरतमोभञ्जक: स्याद्भर्ग: ।

—वरदराज.

जो प्रकाश द्वारा जगत के बाह्य तथा आन्तरिक अन्धकार को नष्ट करता है वह भर्ग है ।

भ्रस्ज पाके भवेद्धातुर्यस्मात्पचयते ह्यसौ ।
भ्राजते द्दीप्यते यस्माज्जगदन्ते हरत्यपि ॥

—वृ. यो. याज्ञ. अ. ९/५२/५३

—पचाने अर्थ में भ्रस्ज धातु से भर्ग बनता है । अत: जो पचाता है, जो संसार को प्रकाशित करता है तथा अन्त में लय करता है, वह भर्ग है ।

प्रकाशरूपं यत्प्रकाशेन सर्वप्रकाशः प्रकाशते ।

प्रकाश रूपी जिसके प्रकाश से समस्त प्रकाशों को प्रकाशित करता है वह भर्ग है ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा
विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।

—कठोपनिषद्

न वहाँ सूर्य प्रकाशित होता है न चन्द्रमा, न तारागण, न विद्युत प्रकाशित होती है, तब अग्नि का प्रकाश वहाँ कैसे हो सकता है ? जब उसके प्रकाशित होने पर उसके प्रकाश से ये समस्त प्रकाशित होते हैं ऐसा वह भर्ग है ।

भेति—भासयते लोकान् रेतिरञ्जयते प्रजा ।
ग—इत्यागच्छतेऽजस्त्रं भरगाद्भर्ग उच्यते ॥

—वृ. यो. याज्ञ. अ. ९

भ—सर्व लोकों को प्रकाशित करता है, र—प्रजा को आनन्दित करता है, ग—बारम्बार लय करता है, इस कारण भर्ग कहा जाता है ।

भ—भासयतीमांल्लोकनिति ।
र—रञ्जयति इमानि भूतानि ।
ग—गच्छन्त्यस्मिन्नो गच्छन्त्यस्मादिमः ।
प्रजास्तस्माद्भारणत्वाद् भर्गः ।

—मैत्र्युप. ६/७

भकार समस्त लोकों को प्रकाशित करता है, रकार प्राणियों को आनन्दित करता है । जिस आत्मा में प्रजा प्रलय काल में लय होती है और सृष्टि काल में जिससे उत्पन्न होती है वह—गकार है । इस कारण भर्ग कहते हैं ।

मंडलं पुरुषो रश्मय इति त्रयं भर्ग पद वाच्यम् ।

—शुक्ल यजुर्वेद, वाजसनेय सं.

सूर्य मण्डल, पुरुष (ईश्वर), किरण—ये तीन भर्ग के नाम हैं ।

गायत्र्येव भर्गः तेजो वै गायत्री ।

—गोपथ ब्रा. रा. ५/१५

गायत्री ही भर्ग है और भर्ग ही गायत्री है ।

एतद्ब्रह्मैतदमृतमेतद्भर्गः ।

—मैत्र्युप. ६/३५

यही ब्रह्म है, यही अमृत है, यही भर्ग है ।

तज्ज्योतिः परमं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतः स्मृतम् ।

वह ज्योति परम ब्रह्म है, इस कारण भर्ग तेज रूप है ।

भर्गः—अद्वयानन्दलक्षणं सर्वजगदुपादानं परिपूर्ण ज्योति रूपं बिम्बस्थानीयं ब्रह्म वाक्यार्थतया । पर्यवसन्न एतादृग्ब्राह्मं तद्रूपत्वेनेति शेषः ।

—निर्णय कल्पवल्याख्य

द्वैत रहित, आनन्द स्वरूप, समस्त जगत् का आधार ज्योति स्वरूप, मण्डलस्थानावर्ती, ब्रह्म—वाक्यों से सम्पन्न ऐसा ब्रह्म स्वरूप वह भर्ग है ।

ईश्वर पुरुषाख्यं तु सत्यधर्माणमव्ययम् ।
भर्गाख्यं विष्णु संज्ञं तु यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।

—व्यासः

ईश्वर, पुरुष नामक, सत्य, धर्मवान्, अविनाशी, भर्ग विष्णु का तेज है, जिसको जानकर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होता है ।

तेजो वै ब्रह्मवर्चसम् गायत्री तेजस्वी वर्चसी भवति ।

—ऐतरेय ब्रा. अ. १/१

निश्चित करके भर्ग ब्रह्म तेज है, अतः गायत्री तेज स्वरूप है ।

शिव केचित्पठन्ति स्म शक्तिरूपं पठन्ति वै ।
केचित्सूर्यं केचिदग्निं वेदगा अग्निहोत्रिणः ॥

—भार्गव

भर्ग को कोई शिव कहते हैं, कोई शक्तिमान कहते हैं, कोई वैदिक अग्निहोत्रीय अग्नि कहते हैं ।

भादीसाविति रूपं हि भृस्जपाकेऽर्थेह्यमृतम् ।
औषध्यादिकं पचति भ्राज दीप्तौ तथा भवेत् ॥
भगस्याद्भ्राजत इति बहुलं वन्द ईरितम् ॥

—अग्नि पुराण.

दीप्त अर्थ में भी धातु से निर्मित भर्ग का अर्थ तेज रूप है । भ्रस्ज धातु पाक अर्थ में निमित्त का अर्थ है जो औषधि आदि को पचाता है । प्रकाश स्वरूप भर्ग को वेद में अनेक प्रकार से कहा गया है ।

भर्ग की उत्पत्ति

भ्रस्ज—पाके, असुन (भ्रस्जो रोप्रधयोरन्यतरस्या)
मिति रोपधयोर्लोपः रमागमः न्यङ्क्वादित्वाकुत्वम् ।

—गृह्य परिशिष्टे

पाक अर्थ में भ्रस्ज धातु से असुन प्रत्यय होकर (भ्रस्जो रोपध्योरन्यतरस्याम) इस सूत्र से उपधा का लोप और समागम होकर (न्यङ्क) से कुत्व होता है, इससे भर्ग सिद्ध हुआ है ।

तेज को, बल को, शक्ति को धारण करने की मनुष्य को अत्यन्त आवश्यकता है । क्योंकि बल के बिना न जीवन धारण हो सकता है, न उन्नति हो सकती है और न घातक तत्वों से आत्म रक्षा हो सकती है, न निर्बल को देखकर हर किसी को आक्रमण अन्याय एवं शोषण करने का लालच आता है इसलिए न्याय रक्षा के लिए जहाँ शक्तिमानों का धर्मात्मा बनना उचित है वहाँ दुर्बलों को भी अपना बल बढ़ाना आवश्यक है । "भर्ग" शब्द का सन्देश है कि हम अपना शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, चारित्रिक तथा संगठन बल बढ़ावें जिससे दुर्बलता तथा अन्य हानियों से बच सकें ।

देवत्व का रहस्य

देव कहते हैं–दिव्य को, अलौकिक को, असाधारण को । हम देखते हैं कि साधारणतः दुनियाँ के सब लोग अपनी स्वार्थ पूर्ति में अपनी कामनाओं की तृप्ति में लगे रहते हैं उनकी इच्छा रहती है कि दूसरों से जो कुछ छीन सकें, ले सकें, ले लें । वह साधारण व्यक्ति, को हर किसी से लेने की इच्छा करते हैं, लेवता हैं । परन्तु वे असाधारण व्यक्ति जो अपनी स्वार्थ पूर्ति, वासनाओं की तृप्ति और छल–कपट में न लगाकर परमार्थ के लिए अर्पण करते हैं, उन्हें दूसरों की सेवा में लगाते हैं, सदैव देते रहने की इच्छा करते हैं, वे देवता हैं ।

देवता दिव्य होते हैं अथवा यों कहना चाहिए कि जिनकी भावनाएँ, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ दिव्य हों वे देवता हैं, देवता इस तरह नहीं सोचते जिए तरह दुनियाँदार आदमी सोचते हैं, वे वस्तुओं और घटनाओं को उस दृष्टि से नहीं देखते जिस दृष्टि से दुनियादार लोग देखते हैं । उनके सोचने व देखने का तरीका भिन्न होता है । दिव्य सिद्धान्तों को सामने रखकर, उनके आधार पर अपने कर्तव्य का निर्णय करते हैं और जो कर्तव्य उन्हें जँच जाता है उसको बड़े प्रलोभन, आकर्षण और आपत्ति या भय होने पर भी नहीं छोड़ते । कारण यह है कि साधारण लोगों की भाँति उनकी तृप्ति और प्रसन्नता पदार्थों तक सीमित नहीं रहती, उनका दृष्टिकोण भिन्न होता है । वे अपने कर्तव्य को केन्द्र बिन्दु मानकर उसी में अपनी श्रेष्ठतम सद्भावनाओं, प्रसन्नताओं को केन्द्रीभूत करते हैं और उसमें रमण करते हुए सच्ची सुख–शान्ति पाते हैं ।

जिस स्तर पर साधारण लोग खड़े होते हैं वे उससे ऊँचे खड़े होते हैं और असाधारण परिणाम को अपनाते हैं । उनकी जीवन ज्योति लोक से ऊँची उठी हुई होने के कारण अलौकिक कही जाती है । कहते हैं कि देवता स्वर्ग में रहते हैं और स्वर्ग पृथ्वी से ऊपर

है । इसका तात्पर्य इतना ही है कि वे उस विचार लोक में विचरते हैं, जो स्वार्थ और संकीर्णता की तुच्छता से उतना ही ऊँचा है जितना पृथ्वी से स्वर्ग । इस लिए देवताओं का लोक मनुष्य लोक से ऊपर माना जाता है । यह मान्यता बिल्कुल सत्य है कि देवलोक में देवताओं को सब प्रकार का आनन्द ही आनन्द होता है । साधारण व्यक्ति कितना भी धन–वैभव इकट्ठा करके भी उतना सुख प्राप्त नहीं कर सकते जितना कि देवताओं को स्वभावतः होता है । कारण स्पष्ट है कि भौतिक वस्तुएँ अस्थाई एवं परिवर्तनशील होती हैं । उनके उतार–चढ़ाव के साथ–साथ हर्ष विषाद के आवेश उतरते रहते हैं, परन्तु दिव्य भावनाओं का आनन्द एक रस है, वह सफलता में, असफलता में, सुविधा मे, असुविधा में एक रस रहता है, उसका स्वर्गिक आनन्द ऐसा है जिसका अनुभव करते हुए उसे ऐसी प्रसन्नता उपलब्ध होती है जैसी कि साधारण लोगों के लिए कभी सम्भव नहीं हो सकती ।

गायत्री से परमात्मा के गेयस्वरूप का स्मरण किया गया है ताकि साधक दिव्य बने, दिव्य तत्वों से, दिव्य सिद्धान्तों और दिव्य विश्वासों से उसका अन्तःकरण भर जाये और उसके विचार तथा कार्यों में दिव्यता ओत–प्रोत हो जाये । मरने के बाद जिस दिव्य लोक को प्राप्त करने की लोग कल्पना किया करते हैं वह उन्हें इस लोक में ही प्राप्त हो जावे ।

देव शब्द दिव्यता के अर्थ में प्रयुक्त होता है ईश्वरीय शक्ति को देव कहते हैं । इसका कुछ परिचय नीचे देखिए–

सर्वद्योतनात्मकाऽखण्डचिदेकरसम् ।

–शंकर भाष्य

सर्व प्रकाशक, अखण्ड, चैतन्य, एक रस देव का नाम है ।

सर्वभूतेष्वात्मतया द्योतयते स्तूपतेस्तुस्तये:
सर्वत्र गच्छति तस्माद् देवः ।

–शब्द कल्पद्रुम

समस्त प्राणियों को आत्म रूप से प्रकाशित करता है । स्तोत्रों से स्तुति की जाती है । सर्वत्र व्याप्त है इसिलिए देव कहा जाता है ।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निगुर्णश्च ॥

—श्वेताश्वतरः

एक ही देव समस्त प्राणियों में सर्वव्यापी आत्मा है । वह कर्मों का स्वामी, सर्व कर्मों का निवासभूत, साक्षी, सबको चेतन करने वाला, अनन्य और निर्गुण है ।

सर्व द्यौतात्मके आत्मनि परमेश्वर ।

—महीधर

सर्व प्रकाशों में, आत्मा में, देवताओं में, परमेश्वर में देव शब्द का प्रयोग होता है ।

दीप्यते क्रीडते यस्माद्रोचते द्योतते दिवि ।
तस्माद् देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्व देवतैः ॥

जिस कारण स्वर्ग में क्रीड़ा करता है, प्रकाश करता है, इस कारण से देव कहा गया है, जिसकी देवता स्तुति करते हैं ।

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्युस्थाने भवित वा ।

दान में, प्रकाश में, स्वर्ग में, देव शब्द को प्रयोग किया जाता है ।

रज्वाकाराद् दीव्यति, प्रकाशयतीति देवः ।
ध्यातृहृदयारविन्दमध्ये क्रीड़ति इति देवः ॥
दीव्यति नन्दयतीति देवः ।
अखण्डानन्दैक रस इत्यर्थ ॥

—संध्या भाष्य

स्वर्ग में रस्सी के आकार से जो प्रकाश करता है वह देव है, ध्यान वालों के हृदय कमल में जो खेलता है, वह देव है अथवा उन्हें जो आनन्दित करता है, वह देव है । भक्तों को आनन्दित करने से अखण्ड आनन्द एक रस होता है ।

देवस्य की सिद्धि

'दिवु'—क्रीड़ा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति।
मोद मन, स्वप्न, कान्ति गतिषु पचाद्यच् प्रत्यय :।
दीव्यति प्रकाशते चराचरञ्जगत् स देवः प्रकाशरूपं वा।

क्रीड़ा जीतने की इच्छा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गति इत्यादिक अर्थों में (पचाद्यच्) इन सबसे अच् प्रत्यय होकर देव बनता है। जो चराचर जगत् को प्रकाशित करे अथवा प्रकाश रूप है, वह देव है।

''धीमहि'' शब्द का अर्थ

धीमहि कहते हैं ध्यान करने को। ध्यान का चमत्कार प्रत्यक्ष है। जिस वस्तु का हम ध्यान करते हैं उस पर मन जमता है, मन जमने से उसमें रुचि उत्पन्न होती है। रुचि उत्पन्न होने से उसे प्राप्त करने की आकांक्षा बढ़ती है, इस आकांक्षा से प्रयत्न होता है और यह प्रयत्न अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करा देता है। ध्यान बीज है और सफलता उसका फल। बीज अपनी क्रमिक अवस्थाओं में विकसित होता हुआ फल के रूप में परिणत होता है। बिना बीज के न वृक्ष हो सकता है, न फल।

यह ठीक है कि अनेक बार बोये गये बीज निरर्थक चले जाते हैं, उनसे अंकुर उगते नहीं या उगकर सूख जाते हैं। इसके अनेक कारण होते हैं। बीज का निर्जीव होना, भूमि अच्छी न मिलना, ऋतु अनुकूल न होना, समय पर खाद—पानी न मिलना, कीड़े—मकोड़े चिड़ियों पशुओं से रक्षा न होना आदि कारणों से कई बार बोये हुए बीज निष्फल होते देखे गये हैं इतना होने पर भी बीज की अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता, क्योंकि जब कभी भी कोई पेड़—पौधा उगेगा, बढ़ेगा या फल देगा तो उसके मूल में कोई बीज अवश्य रहा होगा। यह हो नहीं सकता कि शाखाओं में रहने वाले ग्रन्थि बीज या फलों में रहने वाले पुष्ट बीज

में से कहीं किसी बीज के बिना वह पौधा उत्पन्न हुआ हो । वृक्ष के मूल में बीज रहना अनिवार्य है । जिसे पौधा उपजाना होगा, उसे यह जानते हुए भी कि अनेक बार बीज निरर्थक भी चले जाते हैं आखिर बीज का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा ।

कोई भी कार्य पहले कल्पना में आता है, फिर उसकी योजना बनती है तब वह क्रिया के रूप में प्रकट होता है । ध्यान में यही मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया काम करती है । किसी तथ्य पर चित्त वृत्तियों का एकाग्र करना ध्यान कहलाता है । ध्यान का सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि उससे चित्त की बिखरी हुई वृत्तियों को एक स्थान पर एकत्रित होने का अभ्यास होता है । यह अभ्यास ही योग साधन है । पातंजलि योग में चित्त–वृत्तियों के निरोध को योग कहा है, ध्यान के द्वारा यह साधना होती है, एकाग्रता आती है, चित्त स्थिर होता है और मन के ऊपर नियन्त्रण स्थापित हो जाता है । यह एकाग्रता एक ऐसी शक्ति है जिसमें मैस्मरेजम जैसे छोटे–मोटे खेल तो चुटकी बजाते–बजाते होते हैं । थोड़ा अभ्यास बढ़ने पर ही जीवन की प्रत्येक दशा में लाभ ही लाभ, सफलता ही सफलता दृष्टिगोचर होती है ।

दूसरा लाभ ध्यान का यह है कि जिस वस्तु का ध्यान करते हैं वह धीरे–धीरे हमारे मन की रुचि का प्रधान विषय बन जाती है । जो व्यक्ति कामिनियों का ध्यान करते रहते हैं उनका अन्तःकरण कालान्तर में व्यभिचारी हो जाता है । जो धर्म का, ईश्वर का चिंतन करते हैं वे कालांतर में साधु वृत्ति के बन जाते हैं । गायत्री मंत्र के पूर्वार्द्ध में उस सविता, वरेण्य, भर्ग और देव शक्ति वाले ईश्वर का ध्यान करने का आदेश किया है ताकि ईश्वर की इन्हीं शक्तियों को विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित किया जा सके । इन शक्तियों का ध्यान करने का परिणाम यही हो सकता है कि हम तेजस्विता, श्रेष्ठता, दम एवं दिव्यता को अपने अन्दर अधिकाधिक मात्रा में धारण करते जायँ और अन्ततः हम सत्यं शिवं सुन्दरं सत्ता से अपने को ओत–प्रोत कर लें । धीमहि का अर्थ है–ध्यान करना । मन को जिस कार्य में

लगा दिया जाता है, शरीर के अन्य भाग भी उसी ओर अग्रसर होते हैं। जिन तथ्यों का हम ध्यान करेंगे वे ही हम में प्रकट होंगे।

ध्यानेन हेया वृत्तय: ।

—यो. सू. पा. २/११

ध्यान द्वारा नीच वृत्तियाँ त्याग देनी चाहिए।

रागोपहितं ध्यान

—सांख्य सूत्रे अ. ३ सू. ३०

किसी वस्तु में अनुराग से युक्त हो जाना ध्यान है।

धीमहि आत्मना आत्मरूपेण ध्यानं कृता ।
ध्यानं नाम सर्वशरीरेषु चैतन्यैकतानता ॥

आत्मा रूप द्वारा हम आत्मा का ध्यान करते हैं, समस्त शरीर में चेतनता का फैलना ध्यान कहलाता है।

वयं ध्यायेम ध्येयतया मनसा धारयेम वा
वयम् उपसीमहि उपास्महे वा ॥

हम मन में ध्यान वस्तु को धारण करते हैं अथवा हम उपासना करते हैं।

ध्यायते अनया ध्यानं वा धी:
ध्यायते सम्प्रसारणं च इति ।
धिय: संप्रसारणे इति दीर्घ: ॥

—निर्णय कल्पव्याख्या सं. भा.

जिसके द्वारा ध्यान किया जाय उसको ध्यान अथवा धी: कहते हैं।

ध्यानेन लभते मोक्षं मोक्षेण लभते सुखम् ।
सुखेनानन्दवृद्धि: स्यादानन्दो ब्रह्मविग्रह: ॥

—रुद्रयामलोत्तर तन्त्रे पट. २४/१३९/३

ध्यान द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। मोक्ष से सुख प्राप्त होता है। सुख से आनन्द की वृद्धि होती है और आनन्द ही ब्रह्म स्वरूप है।

ब्रह्मैव व साक्षिरूपमिति तल्लक्षणतया ।
ध्यातिमुपपन्नमिति ।

—निर्णय क.

ब्रह्म ही साक्षी रूप है, इस उद्देश्य से ध्यान करना उचित है ।

अहं ब्रह्मेति धीमहि ।

—अग्नि पु. अ. २१६/१८

मैं ब्रह्म रूप हूँ, ऐसा ध्यान करता हूँ ।

॥ धीमहि की सिद्धि ॥

धीङ् आधारे, लिङ बहुलं छन्दसीति विकरणस्य ।
लुकाध्यातृध्येयव्यापाराभिन्नत्वमेव ध्यानम् ॥

—गृह्य परिशिष्टे नायन.

आधार अर्थ में घीङ धातु से (लिङ् बहुलं छन्दसि) इस सूत्र से विकरण का लोप होने से ध्यान बनता है । अर्थ—ध्यान करने वाले का ध्येय वस्तु से अभिन्न सम्बन्ध होना—ध्यान कहलाता है ।

ध्यै—चिन्तायाम् । ध्यायतेर्लिङ् बहुलं छन्दसीति
सम्प्रसारणम् अव्यत्ययेनात्मनेपदम् ध्यायाम:
चिन्तयाम: निगमनिरुक्तविधानरूपेण चक्षुषा
निदिध्यासं तद्विषयं कुर्म इति ।

—भारद्वाज गृह्य परिशिष्ट

चिन्तवन अर्थ में ध्यै धातु से (बहुलं छन्दसि) इस सूत्र से सम्प्रसारण होकर प्रत्यय करने से आत्मनेपद हुआ । अर्थ—नियम, निरुक्त विधान रूपी नेत्रों से उस स्वरूप का चिन्तन करता हूँ, ध्यान करता हूँ ।

धीमहि शब्द का आदेश यह है कि हम अपने ध्यान क्षेत्र में उन विचारों की ही प्रतिष्ठा करें जो आत्म—कल्याण के लिए श्रेयस्कर हैं । ध्यान, विचार, भाग्य, संकल्प, स्मृति, कल्पना, इच्छा, आकांक्षा की अन्त:भूमि में जैसे आदर्श स्थापित किए जायेंगे, जिस दिशा में उनकी

गति होगी उसी के आधार पर जीवन की कार्य प्रणाली बनेगी और वैसे ही परिणाम उपलब्ध होंगे । इसलिए सबसे अधिक सतकर्ता, सबसे अधिक पवित्रता जिसकी रखी जानी चाहिए वह ध्यान क्षेत्र ही है । हमारे मस्तिष्क में, मन सत् (ईश्वरीय) सवितुः (तेजस्वी) वरेण्यं (श्रेष्ठ) भर्गः (शक्तिशाली) देवस्य (दिव्य) की धीमहि (धारणा) होनी चाहिए तभी हम गायत्री में निहित लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं ।

"धियो" शब्द का विवेचन

'धी' कहते हैं–बुद्धि को । बुद्धि के यों तो कितने ही स्तर हैं और उनके कितने ही नाम हैं । अक्लमन्दी, चतुरता, होशियारी, सूझबूझ, तीक्ष्ण बुद्धि, दूरदर्शिता आदि शब्द बुद्धि विशेष के अर्थ में प्रयोग होते हैं । आमतौर से मस्तिष्क बल को बुद्धि कहते हैं । जिसका मस्तिष्क अधिक बलवान्, अधिक सूक्ष्म है, अधिक स्फूर्तिवान है, उसे बुद्धिमान् कहा जाता है और जो इस गुण से रहित है उसे मूर्ख घोषित कर दिया जाता है ।

परन्तु यह परिभाषा बहुत ही स्थूल और अधूरी है, कितने ही व्यक्ति बड़े चालाक, धूर्त, बगुलाभगत एवं 'हरफनमौला' होते हैं, उनकी उस्तादी के आगे कौआ भी पानी भरता है, दुनियाँ में जितने भी बदमाश, मक्कार, धोखेबाज, झूँठे, लवार, दुष्ट प्रकृति के मनुष्य हैं प्रायः तेज दिमाग के होते हैं, क्योंकि बिना दिमागी तेजी के दुनियाँ भर की खुराफात सोचना और अपने चंगुल में दूसरों को फँसा लेना हो नहीं सकता । कोई मूर्ख इस तरह की चालबाजी सोचे या करना भी चाहे तो वह बेचारा कर नहीं सकता, उसकी पोल खुलने में जरा भी देर नहीं लगेगी । ऐसी तेज बुद्धि, जो आदमी को चालाकी और बदमाशियों से भरा हुआ बना देती है, उससे वह बेवकूफी अच्छी, जिसके कारण मनुष्य बुराइयों से बच जाता है और अपने भविष्य को

उतना अन्धकारमय नहीं बना पाता जितना वे चतुर कहे जाने वाले दिन–रात बनाते हैं ।

ऐसी बुद्धि बेकार है, उसके होने से उसका न होना अच्छा । गायत्री में ऐसी बुद्धि के लिए याचना नहीं की गई है । ऐसी अक्लमन्दी तो कालेजों में, व्यापारिक मण्डियों में, उस्तादों के गिरोह में, कारीगरों के समूह में, देशाटन में, उस विषय के विशेषज्ञों के बीच में रहकर आसानी से सीखी जा सकती है । इस मामूली चीज के लिए आत्मा को परमात्मा के सामने गुहार मचाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती ।

आत्मा को सबसे अधिक आवश्यकता जिस वस्तु की है वह है "सद्‌बुद्धि" इसी को धियः कहते हैं । इसके अभाव में जिस कुबुद्धि से उसका पाला पड़ता है, वह उसे पग–पग पर कुचलती है, उसके लिए नारकीय स्थिति उत्पन्न करती है, जिससे अस्वाभाविक परिस्थिति में पड़कर आत्मा हर घड़ी कष्ट पाती है । धन सम्पत्ति जमा हो जाने से इन्द्रियाँ किसी कदर मौज तो कर लेती हैं पर आत्मा के लिए वह सब एक प्रकार का बोझ ही सिद्ध होता है । इस बोझे के नीचे आत्मा बुरी तरह पिसती है, छटपटाती है, कराहती है और इस विषम स्थिति से बचने के लिए परमात्मा के सामने गुहार मचाती है । कहती है–हे प्रभु ! सद्‌बुद्धि के अभाव में धिय न होने के कारण, प्रतिक्षण मुझे आहत होना पड़ता है, इसलिए आप कृपापूर्वक "धिय" की प्रेरणा कीजिए, "धिय" तत्व से इस जीवन को परिपूर्ण कीजिए जिससे इस कुबुद्धि से छुटकारा मिले और दिव्य जीवन का आनन्द प्राप्त हो ।

गायत्री के पूर्वार्द्ध में, उस सविता, वरेण्य, भर्ग देव का ध्यान किया गया है, इस ध्यान का क्या प्रयोजन है ? क्यों किया गया है ? यह उत्तरार्द्ध में स्पष्ट कर दिया गया है । वह प्रयोजन है–धियः की–सद्‌बुद्धि की प्राप्ति । गायत्री परमात्मा की समीपता का सबसे बड़ा मन्त्र है । उसका लक्ष्य, उद्देश्य और प्रयोजन भी सबसे बड़ा है ।

सद्बुद्धि का प्राप्त होना इतना बड़ा लाभ है, जिसकी तुलना में कोई भी सिद्धि, कोइ सम्पदा नहीं ठहर सकती । इस सर्वोत्तम लाभ की प्राप्ति के लिए आत्मा की जो छटपटाहट है, पिपासा है, आकांक्षा है, पुकार है, उसी के प्रकटीकरण का नाम गायत्री है । गायत्री में "धी" शब्द का प्रयोग सद्बुद्धि की प्राप्ति के लिए हुआ है, इसके कुछ प्रमाण नीचे देखिए–

धी शब्दो बुद्धिवचनः कर्मवचनो वा वाग्वचनश्च ।

–सायन. उब्बंट.

धी शब्द बुद्धिवाची कर्मवाची है ।

बुद्धयो वै धियः ।

–मैत्र्युप. ६/७

बुद्धियाँ "धिय" हैं ।

धर्मादि विषया बुद्धिः । –याज्ञ. सायन.

धर्म आदि विषयक बुद्धि को धी कहते हैं ।

धियो धरणवत्यो बुधयः ।

–विष्णु भाष्य

धारण करने वाली बुद्धियों का नाम धियः है ।

कर्माणि धियः । –अथर्व.

कर्मों को बुद्धि कहते हैं ।

कर्म यज्ञ सहस्त्रेभ्यस्तपो यज्ञो विशिष्यते ।
तपोयज्ञ सहस्त्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥
जप यज्ञ सहस्त्रेभ्यो ध्यानयज्ञो विशिष्यते ।
ध्यानात् परो नास्ति निश्चिद् ध्यानं ज्ञानस्य साधनम् ॥

–लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अ. ५

हजारों कर्म–यज्ञों से तप–यज्ञ विशेष है, हजारों तप–यज्ञों से जप यज्ञ विशेष है, हजारों जप–यज्ञों से ध्यान–यज्ञ श्रेष्ठ है । ध्यान से श्रेष्ठ कोई यज्ञ नहीं है । ध्यान यज्ञ का साधन है ।

"यः" शब्द की मीमांसा

यः का अर्थ है–"जो ।" यह जो का संकेत परमात्मा के लिए किया गया है । गायत्री के पूर्वार्द्ध में जिस सविता वरेण्यं भर्ग देव परमात्मा का वर्णन है, उन गुणों वाला जो परमात्मा है उससे प्रार्थना की गई है । उन पूर्वोक्त शब्दों को दुहरा कर पिष्ट पोषण करने की अपेक्षा यहाँ केवल यः शब्द से संकेत करके काम चलाया गया है कि जो परमत्मा उन शक्तियों वाला है, वह हमारे लिए धियः तत्व प्रदान करे ।

य इति लिंग व्यत्ययः यद् भर्गः यः भर्गो वा ।

–सायण महीधर.

लिंग व्यत्यय से यद्भर्ग अथवा यः भर्ग बना है ।

यः शब्दश्च यदित्यर्थे लिंगव्यत्ययतो भवेत् ।

–भारद्वाज उष्णवः

लिंग व्यत्यय से यः शब्द यत् हो जाता है ।

यः प्रत्यग्रूपः ।

–निर्णयकल्प.

यः प्रत्यक्ष आत्मरूप है । इस विशुद्ध आत्मा को ही परमात्मा कहते हैं ।

यत्सत्यज्ञानादि लक्षणम् ।

–विद्यारण्य स्वा.

यः सत्य ज्ञानादि रूप ब्रह्म है ।

यः सविता देवः ।

–सायणः महीधर.

यः सविता (सूर्य) देव है ।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥

–गीता अ. ५/२४

जो पुरुष निश्चय करके अन्तर आत्मा में ही सुख वाला है और आत्मा में ही आराम वाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञान वाला है ऐसा वह ब्रह्मभूत हुआ योगी ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त करता है ।

"यः" परमात्मा का हमारे अन्तःकरण में निवास हो, उसे धारण करें, उसकी पूजा तथा शक्ति से जीवन नैया पार करें यही इस "यः" पद का मन्तव्य है ।

नः शब्द का सन्देश

नः—अस्मदीयाः ।

नः का अर्थ है—हम लोगों का । —तारानाथ

नः—अस्माकम् ।

नः का अर्थ है—हमारा । —सायण, महीधर.

नः शब्द बहुवचन के शब्द में प्रयुक्त होता है । "मैं" अकेले के लिए और "हम" शब्द बहुतों के समूह के लिए काम में लाया जाता है । परमात्मा से सद्बुद्धि की याचना की गई । पर वह अकेले अपने लिए नहीं की गई है । कारण यह है कि मानव प्राणी सामाजिक प्राणी है, वह बहुत से घटकों से मिलकर बना है । यह विशालता और विस्तृतता ही उसका गौरव है । उदार चरित्र वे हैं जिन्होंने वसुधा को अपना कुटुम्ब माना है "अहम्" का दायरा विस्तृत कर लिया है । संसार में जिसका अहम् जितना बड़ा है अपने आत्मा को जितना व्यापक मानता है उसका आत्मज्ञान उतना ही बड़ा समझा जाता है ।

मनुष्य स्वयं एक नहीं वरन् अनेक है । उसके पञ्च कोष हैं, पाँच शरीर हैं, अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय, आनन्दमय यह पाँच कोष पुरुष ने धारण कर रखे हैं । इन सभी का स्वस्थ रहना आवश्यक है । यदि एक भी अस्वस्थ हो, कुबुद्धिग्रस्त हो तो अन्यों को स्वस्थतापूर्ण नहीं कहा जा सकता । अन्तःकरण चतुष्टय में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार की चौकड़ी है । यदि इनमें से एक भी घायल हो

तो समझिए कि लँगड़ापन आ गया है । हृदय, फेफड़ा, आमाशय, जिगर, आँत, वृक्क, मस्तिष्क आदि अंगों में से एक भी अंग गड़बड़ करने लगे तो अन्य अंगों की स्वस्थता का विशेष मूल्य न रहेगा । जो बात हमारी आन्तरिक स्थिति के बारे में है वही बात बाह्य जीवन के सम्बन्ध से चरितार्थ होती है । हमारी पारिवारिक, सामाजिक और राजनैतिक, सुख–शान्ति के साथ हमारी व्यक्तिगत सुख–शान्ति जुड़ी होती है, जिस परिवार के लोग कुबुद्धि युक्त हों, जिस समाज में कुबुद्धि छाई हुई हो, जिस देश में कुबुद्धि ने अराजकता फैला रखी हो, उनके बीच रहकर कोई व्यक्ति चैन से नहीं बैठ सकता । इसलिए संतुलित दायरे में "मैं" शब्द का प्रयोग न करके गायत्री में "हम" शब्द का उपयोग हुआ है, सद्‌बुद्धि की याचना सीमित "मैं" के लिए नहीं, विस्तृत "हम" के लिए की गई है । क्योंकि सबकी सुबुद्धि पर ही अपना कल्याण निर्भर है ।

जब पड़ौसी का छप्पर जल रहा हो तो अपना घर सुरक्षित नहीं, जब मुहल्ले में हैजा, चेचक आदि फैले हों तो अपना कुटुम्ब सुरक्षित नहीं, अराजकता और दंगों का दौर–दौरा हो तो अपनी जान–माल सुरक्षित नहीं । यदि बुरे लोंगों के बीच रहना पड़ता हो तो कोई कारण नहीं कि अपने साधु मन में भी विक्षोभ उत्पन्न न हो । इन सब बातों को ध्यान में रखकर विचार करने से सहज ही पता चल जाता है कि व्यक्ति का संकीर्ण स्वार्थ वास्तव में सच्चा स्वार्थ नहीं है । जिसमें सबका स्वार्थ है, असल में वही अपना स्वार्थ है । इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए भगवान बुद्ध ने कहा था कि–जब तक एक भी प्राणी बन्धन में है तब तक मैं मुक्ति नहीं चाहता । व्यक्ति का व्यक्तिगत सुख उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि सबको सुखी होते देखने का सुख । यही कारण है कि अनेकों सिद्ध महापुरुष स्वर्ग या मुक्ति का सुख भोगने की अपेक्षा संसार के दुःखग्रस्त लोगों की सेवा सहायता करने का उद्देश्य धारण करके संसार में ही रहना अधिक पसन्द करते हैं ।

हम सबको सुबुद्धि मिले । मेरे अन्तर्जगत और बाह्य जगत में सर्वत्र सद्बुद्धि का प्रकाश हो, ऐसी प्रार्थना भगवान से की जाती है । इस सद्बुद्धि के महत्व को "नः" शब्द में स्पष्ट कर दिया गया है ।

प्रचोदयात् का रहस्य

प्रचोदयात् का अर्थ है—प्रेरणा करना, जोड़ना, बढ़ाना । गायत्री द्वारा उस सविता, वरेण्य, भर्ग का ध्यान करते हैं । यह ध्यान इसलिए करते हैं कि उसमें सद्बुद्धि की याचना परमात्मा से की गई है, पर वह आज की दीन—हीन विधि से नहीं वरन् वैदिक संस्कृति के अनुसार, आत्म—गौरव से युक्त भावना से की गई है । दीनता के साथ भिक्षा माँग लेना भारतीय संस्कृति से मेल नहीं खाता फिर चाहे वह भिक्षा ईश्वर से ही क्यों न माँगी गई हो ।

प्रचोदयात् कहकर परमात्मा से बुद्धि को प्रेरित करने की याचना की गई है । वे हमारी बुद्धि को प्रेरणा दें जिससे उत्साहित होकर हम अपने अन्तःकरण का निर्माण करने में जुट जायें । अपनी कुबुद्धि से लड़कर उसे परास्त करें और उसके स्थान पर सुबुद्धि के स्थापन का पुरुषार्थ दिखावें । भारतीय संस्कृति कर्मवाद की संस्कृति है, उसमें पुरुषार्थ, प्रयत्न, संघर्ष और श्रम करके अभीष्ट वस्तुऐं प्राप्त करने का आदेश है । ईश्वर से जो भी प्रार्थनाऐं की गई हैं उनमें ईश्वर का आशीर्वाद, पथ—प्रदर्शन, नेतृत्व माँगा गया है । गुरुजनों से भी शुभ कार्यों के आरम्भ में इसी प्रकार से आशीर्वाद माँगा जाता है । जब बालक परीक्षा देने जाते हैं तब गुरुओं से उत्तीर्ण होने का आशीर्वाद माँगते हैं । आशीर्वाद को पाकर छात्र का उत्साह बढ़ता है । वह अपने प्रयत्न में परीक्षा में उत्तीर्ण होता है । कोई छात्र यह आशा रखे कि मुझे स्वयं कुछ प्रयत्न न करना पड़े और केवल मात्र आशीर्वाद की शक्ति से उत्तीर्ण होने का प्रमाण—पत्र मिल जाय तो यह अनुचित आशा कही जायगी ।

ईश्वरीय विधान में कर्म के साथ फल भी जोड़ा गया है, यत्न की पूँछ से सफलता बँधी हुई है । आज जो प्रारब्ध या भाग्य के रूप में हमारे सामने मौजूद है, वह एक समय का कर्म है, कालान्तर में कर्म का जब परिपाक हो जाता है तो उसे भाग्य कहते हैं । भाग्य का कारण ईश्वर की कृपा–अकृपा नहीं वरन् भूतकाल में किए हुए अपने कर्म ही हैं जो पककर समयानुसार हमारे सामने उगते हैं और प्रारब्ध कहलाते हैं । ईश्वर किसी पर प्रसन्न–अप्रसन्न नहीं होता, उसके लिए सब प्राणी समान हैं, सबको उसने समान अवसर और अधिकार दिये हैं । साथ ही यह स्वाधीनता भी दी है कि भले–बुरे जैसे चाहे वैसे कर्म करे, परन्तु कर्मफल की दृष्टि से उसे परतंत्र रखा है । अपने किए हुए कर्मों के फल से बचना कठिन है ।

गुरुजनों से या ईश्वर से आशीर्वाद माँगना ही उचित है क्योंकि उनका अन्तःकरण सदा ही सत्प्रयत्न करने वाले के लिए स्वयमेव प्रवाहित होता रहता है । जैसे ही हम सन्मार्ग की ओर कदम उठाते हैं वैसे ही वह आशीर्वाद और भी बलपूर्वक हमारे साथ संयुक्त हो जाता है, परन्तु यदि हम कुपथ पर चलें या आलसी, प्रमादी बने बैठे रहें और ईश्वर से सहायता की आशा रखें तो ऐसी आशा फलवती नहीं हो सकती । कर्मफल की सुदृढ़ व्यवस्था को तोड़कर ईश्वर ऐसा नहीं करता कि किसी की निन्दा स्तुति से प्रसन्न–अप्रसन्न होकर चाहे जैसी उल्टी–सीधी व्यवस्था बनावे ।

प्रार्थना का अर्थ है किसी पदार्थ को श्रद्धापूर्वक अपने में अभिमंत्रित करना, अपने अन्दर स्थापित करना, अपनी वृत्तियों को उस ओर लगाना । अपनी आन्तरिक स्थिति इस प्रकार की बनाना जिसमें अभीष्ट इच्छा की पूर्ति के लिए विचार और कार्यों के लिए समुचित भूमि तैयार हो जाय । दिव्य शक्तियाँ हमें आशीर्वाद, प्रेरणा और प्रोत्साहन देती हैं । यह सूक्ष्म दान हमारी अन्तःवृत्तियों को मोड़ने में सहायक सिद्ध होता है । इसलिए उसका महत्व असाधारण है, विश्वास बीज का किसी दिशा में मुड़ जाना इस बात का दृढ़ आधार है

कि मन की अन्य वृत्तियाँ भी उसी दिशा में जुड़ेंगी । प्रार्थना एक मनोवैज्ञानिक समस्त धार्मिक क्रिया है जो हमारी मनोभूमि को ऐसी उर्वर बनाती है, जिसमें मनोवांछित स्थिति भली प्रकार उग सके और फलफूल सके ।

गायत्री मंत्र में प्रचोदयात् शब्द बहुत ही शानदार है । उसमें आत्मा के गौरव की पूरी तरह रक्षा की गई है । आत्मा शक्तियों का भण्डार है । उसमें वे सब तत्व मौजूद हैं जिसकी सहायता से वह मनचाही स्थितियाँ तथा वस्तुएँ प्राप्त कर सकें । उसे किसी वस्तु या स्थिति की याचना करने की आवश्यकता नहीं, केवल ऐसी प्रेरणा की आवश्यकता है जिससे बुद्धि शुद्ध हो जाय, कुबुद्धि का निवारण होकर उसका स्थान सुबुद्धि ग्रहण कर ले । जब सुबुद्धि आ जायगी तो संसार का कोई भी ऐश्वर्य उसके लिए दुर्लभ न होगा । गायत्री में सुबुद्धि के लिए नहीं सद्बुद्धि की प्रेरणा, प्रोत्साहन, आशीर्वाद देने की ईश्वर से प्रार्थना की गई है क्योंकि सद्बुद्धि भी अपने प्रयत्न से ही आती है, इसके लिए संयम, व्रत, उपवास, स्वाध्याय, सत्संग, सेवा आदि सत्कर्मों का आश्रय लेना पड़ता है, पर उसकी प्रेरणा ईश्वर से ही प्राप्त होती है । अन्तःप्रेरणा न हो तो उपर्युक्त सारे कर्मकाण्ड निरर्थक हैं । आत्म–दर्शन के, ब्रह्म प्राप्ति के, दैवी वरदान के लिए जिस अन्तःप्रेरणा की आवश्यकता है, उसी की परमात्मा से प्रार्थना, याचना की गई है । प्रचोदयात् शब्द इसी प्रेरणा का बोधक है । नीचे के प्रमाणों में यही बताया भी गया है ।

प्रेरयति, अयमाशयः सर्वस्याचेतनाय ।
अचेतनचेतनोऽपि भगवांश्चात्र प्रेरयति ॥

—विष्णु. भा.

प्रेरयति का यह भावार्थ है, समस्त अचेतनों को तथा समस्त चेतनाओं को भी भगवान् ही यहाँ चैतन्य करता है ।

योजयति धर्मार्थ काममोक्षे चास्मदादीनां बुद्धिम् ।

—भारद्वाज यो. याज्ञ.

हमारी बुद्धि को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में युक्त करता है ।

चुद् प्रेरणे प्रकर्षेण चोदयति प्रेरयति ।

—सायण., महीधर.

चुद् धातु प्रेरणा करने में है, अतः प्रचोदयात् का अर्थ है सम्यक् प्रकार से हमारी बुद्धि को प्रेरणा करे ।

प्रचोदयात् प्रेरयत् । —भार्गव.

प्रचोदयात् अर्थात् प्रेरणा करे ।

प्रचोदयात्—प्रकर्षेण प्रेरयति, सकलं कर्मानुष्ठान
प्रवीणां, दुष्कर्म विमुखां चास्मद् बुद्धिं करोति
वृतोः प्रकाशयतीत वा ।

—तैत्तिरीय सन्ध्या भाष्य

अच्छी प्रकार हमारी बुद्धि को पवित्र कर्मों में प्रवीण और दुष्कर्मों से विमुख करें, सद्वृत्ति को प्रकाशित करें ।

धर्मशास्त्रों का सार गायत्री

महामन्त्रस्य चाप्यस्य स्थाने—स्थाने पदे—पदे ।
गूढ़ो रहस्य गर्भोनन्तोपदेश समुच्चयः ॥

(अस्य महामन्त्रस्य) इस महामन्त्र के (स्थाने—स्थाने) स्थान—स्थान पर (च) और (पदे—पदे) पद—पद पर (रहस्य गर्भः) जिनमें रहस्य छिपा हुआ है ऐसे (अनन्तोपदेश समुच्चयः) अनन्त उपदेशों का समूह (गूढ़) छिपा हुआ अन्तर्हित है ।

सो दधाति नरश्चैतानुपदेशांस्तु मानसे ।
जायते ह्युभयं तस्य लोकमानन्दसंकुलम् ॥

(यौ नरः) जो मनुष्य (एतान्) इन (उपदेशान्) उपदेशों को (मानसे दधाति) मन से धारण करता है (तस्य) उसके (उभय लोक) दोनों लोक (आनन्द संकुल) आनन्द से व्याप्त (जायते) हो जाते हैं ।

गायत्री महामंत्र एक अगाध समुद्र है जिसके गर्भ में छिपे हुए रत्नों का पता लगाना सहज कार्य नहीं है । इस महासागर में से सभी ने अपनी-अपनी प्रज्ञा, योग्यता और आकांक्षा के अनुरूप रत्न निकाले हैं, पर उस अक्षय भण्डार का पार किसी को भी नहीं मिला है । गायत्री के एक-एक अक्षर और एक-एक पद में कितना गहरा ज्ञान सन्निहित है इसका पता लगाते हुए जो जितना ऊँचा विद्वान् है उसे उतनी ही कठिनाई होती है । अनेक ऋषि-महर्षियों ने गायत्री मन्त्र के प्रत्येक अक्षर पर विशेष व्याख्याऐं की हैं और अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार गायत्री के पदों के अर्थ निकाले हैं । वे अर्थ इतने अधिक विस्तृत और मर्म पूर्ण हैं कि इन थोड़ी पंक्तियों में उन्हें खुलासा प्रकट नहीं किया जा सकता । इन पंक्तियों में गायत्री मन्त्र सर्व सुलभ अर्थ संक्षिप्त रूप से लिखा जा रहा है जिससे उसके सामान्य अर्थ को सुविधापूर्वक समझा जा सके । आइए, गायत्री मंत्र के एक-एक शब्द का अर्थ करें ।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

ॐ—ब्रह्म

भूः—प्राण स्वरूप

भुवः—दुःखनाशक

तत्—उस

सवितुः—तेजस्वी, प्रकाशवान

वरेण्यं—श्रेष्ठ

भर्गः—पाप नाशक

देवस्य—दिव्य को, देने वाले को

धीमहि—धारण करें

धियो—बुद्धि

यो—जो

नः—हमारी

प्रचोदयात्—प्रेरित करें

अर्थात्—उस सुख स्वरूप, दुःखनाशक, श्रेष्ठ तेजस्वी, पाप नाशक, प्राण स्वरूप, ब्रह्म को हम धारण करते हैं जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरणा देता है ।

इस अर्थ पर विचार करने से उसके अन्तर्गत तीन तथ्य प्रकट होते हैं ।(१) ईश्वर के दिव्य गुणों का चिन्तन (२) ईश्वर को अपने अन्दर धारण करना (३) सद्‌बुद्धि की प्रेरणा के लिए प्रार्थना । यह तीनों ही बातें साधारण महत्व की हैं ।

मनुष्य जिस दिशा में विचार करता है, जिन वस्तुओं का चिन्तन करता है, जिन तत्वों पर ध्यान एकाग्र करता है वह सब धीरे—धीरे उस चिन्तन करने वाले की मनोभूमि में स्थित और वृद्धि को प्राप्त करते जाते हैं । विचार विज्ञान की विस्तृत विवेचना तो कहीं अन्यत्र करेंगे पर उसके सारभूत सिद्धान्तों को हमें समझ लेना चाहिए कि जिन बातों पर हम चित्त को एकाग्र करेंगे उसी दिशा में हमारी मानसिक शक्तियाँ प्रवाहित होने लगती हैं और अपनी अद्‌भुत सामर्थ्यों के द्वारा सूक्ष्म लोकों से ऐसे साधन, हेतु और उपकरण पकड़ लाती हैं जिनके आधार पर उसी चिन्तन की दिशा में मनुष्य को नाना प्रकार की गुप्त प्रकट, दृश्य—अदृश्य सहायताऐं मिलती हैं और उसी मार्ग में सफलताओं का ताँता बँध जाता है चिन्तन का ऐसा ही महत्व और माहात्म्य है । ध्यान योग की महिमा किसी से छिपी नहीं है ।

गायत्री मन्त्र के प्रथम भाग में ईश्वर के कुछ ऐसे गुणों का चिन्तन है जो मानव जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । आनन्द, दुःख का नाश, श्रेष्ठता, तेज, निर्भरता एवं आत्मा की सर्व व्यापकता, ' 'आत्मवत् सर्वभूतेषु'' की मान्यता पर जितना भी ध्यान एकाग्र किया जायगा, मस्तिष्क इन तत्वों की अपने में वृद्धि करेगा । मन इनकी ओर आकर्षित होगा, अभ्यस्त बनेगा और इसी आधार पर काम

करेगा । आत्मा की सच्चिदानन्द स्थिति का चिन्तन दुःख, शोक रहित ब्राह्मी स्थिति का चिन्तन, श्रेष्ठता, तेजस्विता और निर्मलता का चिन्तन, आत्मा की सर्वव्यापकता का चिन्तन यदि गहरी अनुभूति और श्रद्धापूर्वक किया जाय तो आत्मा एक स्वर्गीय दिव्य भाव से ओत–प्रोत हो जाता है । आत्मा इस दिव्य आनन्द को विचार क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखता वरन् क्रिया में लगाकर इसका सुदृढ़ आनन्द भोगने की ओर कदम उठाता है ।

गायत्री मन्त्र के दूसरे भाग में उपर्युक्त गुणों वाले तेज पुञ्ज को, परमात्मा को अपने में धारण करने की प्रतिज्ञा है । उस दिव्य गुणों वाले परमात्मा का केवल चिन्तन मात्र किया जाय, सो बात नहीं, वरन् गायत्री का आत्मा को सुदृढ़ आदेश है कि उस ब्रह्म को, उस दिव्य गुण सम्पन्न परमात्मा को अपने अन्दर धारण करें, उसे अपने रोम–रोम में ओत–प्रोत कर लें, परमात्मा को अपने कण–कण में व्याप्त देखें और ऐसा अनुभव करें कि उन दिव्य गुणों में उस ईश्वरीय सत्ता में अपना "अहम्" पूर्ण रूप से निमग्न हो गया है । इस प्रकार की धारणा से जितने समय तक मनुष्य ओत–प्रोत रहेगा उतने समय तक उसे भूलोक में रहते हुए भी ब्रह्मलोक के आनन्द का अनुभव होगा । यह अनुभव इतना गम्भीर है कि आगामी जीवन में, बाह्य आचरणों में उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता । उसमें सात्विक तत्वों की मंगलमय अभिवृद्धि न हो, ऐसा हो नहीं सकता ।

गायत्री मंत्र के तीसरे भाग में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह हमारे लिए सद्बुद्धि की प्रेरणा करें हमें सात्विक बुद्धि प्रदान करें । हमारे मस्तिष्क को कुविचारों, कुसंस्कारों, नीच वासनाओं, दुर्भावनाओं से छुड़ाकर सतोगुणी ऋतम्भरा बुद्धि से, विवेके से, सद्ज्ञान से पूर्ण करें ।

इस प्रार्थना के अन्तर्गत बताया गया है कि प्रथम भाग में बताये हुए दिव्य गुणों को प्राप्त करने के लिए दूसरे भाग में बताई गई ब्रह्म धारणा के लिए इस तीसरे भाग में उपाय बता दिया गया है कि अपनी

बुद्धि को सात्विक बनाओ, आदर्शों को ऊँचा उठाओ, उच्च दार्शनिक विचारधाराओं में रमण करो और अपनी तुच्छ तृष्णा एवं वासनाओं के इशारे पर नाचते रहने वाली कुबुद्धि को मानस लोक में से बहिष्कृत कर दो। जैसे–जैसे बुद्धि का कल्मष दूर होगा वैसे ही वैसे दिव्य गुण सम्पन्न परमात्मा के अंशों की अपने में वृद्धि होती जायगी और उसी अनुपात से लौकिक और पारलौकिक आनन्दों की अभिवृद्धि हो जायगी।

गायत्री मंत्र के गर्भ में सन्निहित उपर्युक्त तथ्य में ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों हैं। सद्‌गुणों का चिन्तन ज्ञान है, ब्रह्म की धारणा कर्म है और बुद्धि की सात्विकता, अभीष्ट प्राप्त क्रिया प्रणाली एवं उपासना है। वेदों की समस्त ऋचाएँ इसी तथ्य का विस्तार प्रकट करने के लिए प्रकट हुई हैं। वेदों में "ज्ञान" "कर्म" और "उपासना" यह तीन विषय हैं, गायत्री के बीज में भी इन्हीं तीनों का वर्णन व्यावहारिक, संक्षिप्त एवं सर्वांगपूर्ण है। इस तथ्य को, इस बीज को, सच्चे हृदय से, निष्ठा और श्रद्धा के साथ अन्तःकरण में गहरा उतारने का प्रयत्न करना ही गायत्री की उपासना है। इस उपासना से साधक का सब प्रकार कल्याण ही कल्याण है।

गायत्री मंत्रार्थ

का

द्वितीय खण्ड

गायत्री पर आचार्य रावण का भाष्य

तत् तस्य भर्गस्तेजः धीमहि ध्यायेम चिन्तयाम अत्र यद्यपि तदिति पदं भर्गो विशेषणं नास्ति तथापि तच्छब्द प्रयोगादेव यच्छब्द प्रयोगउपम्यते तस्य कस्य 'सवितः' सर्वभावानां प्रसवितुः पुनः किं भूतस्य 'देवस्य' दीप्तिक्रीडादि युक्तस्य तं कं यो भर्गो नोऽस्माकं धियो बुद्धिः प्रचोदयात् ।

तत् अर्थात् इनके भर्ग तेज का ध्यान चिन्तन करते हैं ।

यहाँ पर यद्यपि तत् शब्द का विशेषण नहीं है, तथापि तत् शब्द के प्रयोग से यत् शब्द का प्रयोग उपलक्षित होता है ।

उनके–किनके ? (सवितुः) समस्त भावों के उत्पन्न कारक का । पुनः वह कैसा है ? (देवस्य) प्रकाश तथा क्रीडादि से युक्त के तेज का ध्यान करते हैं ।

वह तेज कौन है ? जो तेज हमारी (धियः) बुद्धि को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करता है ।

तदहि भर्ग शब्देन बहुविधमाहात्म्यमुक्तम् । सवितु मंडलगतादित्य देवता स्वपुरुष उच्यते अत्र यद्यपि सवितु भर्गः इति । सवितु भर्गयोर्भिन्नता गायत्रीमंत्रे प्रतीयते तथापि परमार्थ चिन्तायां सवितृभर्गयोर्भेदो न विद्यते एव स एव सविता स एव भर्गः सवितृभर्गयोः अद्वैतमेव तथा च राहो शिर इतिवत् स्पष्टोऽभेदत्व साधकः, पुनरपि किं भूतो भर्गः वरेण्यं प्रवर्णीयं प्रार्थनीयम् । जन्म मृत्यु दुःख नाशाम ध्यायेय उपासनीयमित्यर्थः । एवं गायत्र्यास्तस्य च महात्म्यमुपवर्ण्य पुनस्तथैव महाप्रमवणं महाव्याहृतिभृर्विशेषणीभूतासि अभिधीयते तद्यथा किं भूतो भर्ग भूरादि व्याप्य तिष्ठति शेषः तथा च भूरादि त्रैलोक्य प्रकाशकम् । भूर्भूमिलोक. भुवः भुवर्लोकः आन्तरिक्षं, स्वः स्वर्लोकः एवमुपरि क्रमेणावस्थितान् लोकानभिव्याप्यावतिष्ठमानोऽसौ भर्गः एतांस्त्रीँल्लोकानेव

प्रदीपवत् प्रकाशयतीत्यर्थः ।

यहाँ पर उस भर्ग शब्द से अनेक प्रकार का माहात्म्य कहा है ! सवित् मण्डल के अन्तर्गत जो आदित्य देवता है वह सर्वव्यापी पुरुष कहा जाता है ।

गायत्री मन्त्र में यद्यपि 'सवितुभर्गः' यहाँ पर सविता और भर्ग में भिन्नता प्रतीत है तथापि परमार्थ चिन्तन में सविता और भर्ग में भेद नहीं है किन्तु वही सविता है, वही भर्ग है, इस प्रकार अद्वैत है और (राहोः शिर) राहु का शिर अर्थात् राहु ही शिर है, इस प्रकार सवितु भर्गः वही बात हो गई है ।

फिर वह कैसा है ? (वरेण्य) प्रार्थना करने योग्य जन्म–मृत्यु रूपी दुःख नष्ट करने के लिए ध्यान द्वारा उपासनीय है ।

इस प्रकार का माहात्म्य वर्णन कर पुनः भर्ग के माहात्म्य को महा व्याहृति द्वारा विस्तारपूर्वक कहते हैं ।

वह भर्ग कैसा ? जो पृथ्वी आदि लोकों में व्याप्त है और पृथ्वी आदि तीनों लोकों को प्रकाशित करता है । भूः–पृथ्वी लोक है ।

भुवः–भुवर्लोक अर्थात् अन्तरिक्ष है ।

स्वः–स्वर्ग लोक है । इस प्रकार ऊपर क्रमशः स्थित लोकों में व्याप्त होकर वर्तमान वह भर्ग इन तीन लोकों को इस प्रकार दीपक सदृश प्रकाशित करता है ।

महीधर भाष्य

तस्य देवस्य द्योतनात्मकस्य सवितुः प्रेरकस्यान्तर्यामिणो विज्ञानानन्दस्वभावस्य हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्नस्य वा आदित्यान्तरपुरुषस्यवा ब्रह्मणो वरेण्यं वरणीयं सर्वैः प्रार्थनीयं भर्गः सर्वपापानां सर्वसंसारस्य च भर्जनसमर्थ तेजः सत्यज्ञानानन्दवेदान्तप्रतिपाद्य वयं धीमहि ध्यायामः ॥

प्रकाशवान्, प्रेरक, अन्तर्यामी, विज्ञान तथा आनन्द स्वरूप,

हिरण्यगर्भ उपाधि वाले, सूर्य मण्डल में स्थित पुरुष स्वरूप ब्रह्म देव का (वरेण्य) वरण करने योग्य अथवा प्रार्थनीय समस्त संसार को संहार करने में समर्थ वेदान्तों से प्रतिपादित सत्य ज्ञानानन्दस्वरूपी तेज का ध्यान करते हैं ।

तस्य कस्य ? यः सवितानोऽस्माकं धियः बुद्धिः कर्माणि वा प्रचोदयात् प्रकर्षेण चोदयति प्रेरयति सत्कर्मानुष्ठानाय ।

उस किस देव का ध्यान करते हैं ? जो सविता देव हमारी बुद्धि को अथवा कर्मों को शुभ कर्म करने के लिए प्रेरित करता है ।

यद्वा वाक्य भेदेन योजना सवितुर्देवस्य वरेण्यं भर्गः ध्यायामः । यश्च नो बुद्धिः प्रेरयति तं च ध्यायामः सः सवितैव ।

वाक्य के भेद से योजना करते हैं ।

सविता देव के प्रार्थनीय तेज का जो भर्ग हमारी बुद्धि को शुद्ध कर्मों में प्रवृत्त करता है, उस भर्ग का हम ध्यान रखते हैं । वह सविता ही है ।

लिंग व्यत्ययेन योजना—सवितुर्देवस्य तद् भर्गो ।

धीमहि यो यद् भर्गो नो बुद्धिः प्रेरयति ।।

सविता देव के उस तेज का ध्यान करते हैं जो तेज हमारी बुद्धि को शुभ कार्यों में प्रेरणा करता है ।

आचार्य सायण का गायत्री भाष्य

सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य देवस्य द्योतमानस्य सवितुः सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत् स्रष्टुः परमेश्वरस्य आत्मभूतं वरेण्यं सर्वैः उपास्यतया ज्ञेयतया च सम्भजनीयम् ।

सब श्रुतियों में प्रसिद्ध प्रकाशमान देव सविता सर्वान्तर्यामी के रूप में प्रेरणा देने वाला, जगत् का सृष्टा परमेश्वर का आत्मभूत वरेण्य, सबके उपासनीय जानने और भजन करने योग्य है ।

भर्गः अविद्या तत्कार्ययोभर्जनाद् भर्जः स्वयं ज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः ।

अविद्या तथा उसके कार्यों का भर्जन करने के कारण उसे भर्ग कहते हैं वह स्वयं ज्योति और परब्रह्म का तेज है ।

धीमहि तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोहमिति वयं ध्यायेम् ।

जो मैं हूँ सो वह है, जो वह है सो मैं हूँ, ऐसा ध्यान करते हैं ।

(यद्वा) तदिति भर्गो विशेषणम् । सवितुर्देवस्य तत्तादृशं भर्ग धीमहि किं तदित्यपेक्षायामाह य इति लिंगव्यत्ययः यद् भर्गो धियः प्रचोदयादितिध्यायेमेति समन्वयः ।

अथवा–तत् शब्द भर्ग का विशेषण है । सविता देव के सदृश उस भर्ग का ध्यान करता हूँ । वह क्या है–वह भर्ग जो कि बुद्धि को प्रेरणा देता है उसका ध्यान करते हैं । यह समन्वय है ।

(यद्वा) यः सविता सूर्यो धियः कर्माणि प्रचोदयात् प्रेरयति तस्य सवितुः सर्वस्य प्रसवितुर्देवस्य द्योतमानस्य सूर्यस्य तत् सर्वे दृश्यमानतया प्रसिद्धं, वरेण्यं सर्वैः भजनीयं भर्गः पापानां पातकं तेजो मण्डलं धीमहिः ध्येयतया मनसा धारयेम् ।

जो सविता (तेजस्वी) बुद्धि को कर्म के लिए प्रेरणा देता है उस सबका प्रसव करने वाले सविता देव के, प्रकाशमान सूर्य के सबको दिखलाई देने के कारण सबके द्वारा उपासनीय, भजन करने योग्य भर्ग को, पाप के नष्ट करने वाले तेजो मण्डल को ध्येय समझकर धीमहि अर्थात् धारण करते हैं ।

वेदाचार्य उव्वट का गायत्री भाष्य

तदितिषष्ठ्या विपरिणम्यते तस्य सवितुः सर्वस्य प्रसवदातुः आदित्यान्तरपुरुषस्य देवस्य हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्नस्य वा विज्ञानानन्दभावस्य तु ब्राह्मणो वरेण्यं वरणीयं भर्गः शब्दा वायवचनः । वरुणाद्वा अभिषेचनाद् भर्गोपचक्राम । वीर्यो वै भर्ग इति श्रुतिः । तेन हि पापं भृञ्जन्ति दहन्ति (भृजीभर्जने) अथवा भर्गस्तेजो वचनः यद्वा मंडलं पुरुषो रश्मय इत्येव त्रितयमभिप्रेयते देवस्य दानादिगुणायुक्तस्य धीमहि (ध्यैचिंतायाम्)

अस्यच्छान्दसम्प्रसारणम् ध्यायामः चिन्तयामः निदिध्यासं तद्विषयं कुर्म इति यावत् धियो यो नः धी शब्दो बुद्धि वचनः कर्म वचनो वाग्वचनश्च बुद्धिः कर्माणि वा वाचो वायु सविता नोऽस्माकं प्रचोदयात् । यः सवितादेवः नोऽस्माकं धियः कर्माणि विषया वा बुद्धिः प्रचोदयात् प्रेरयेत् । तत् तस्य 'चुद सचोदने' प्रकर्षेण चोदयति प्रेरयति तस्य सवितुः सम्बन्धि वीर्य तेजो वा ध्येयाम इति ।

तत् शब्द षष्ठी का है । उस सविता का जो सम्पूर्ण सृष्टि को प्रसव करता है और जो आदित्य के अन्दर पुरुष हिरण्यगर्भ से अविच्छिन्न विज्ञानानन्द स्वभाव वाले ब्रह्म के वरेण्य वीर्यवान् रूप भर्ग है । भर्ग अर्थात् वीर्य । भर्ग का जन्म वरुण से हुआ है अथवा अभिषेचन से हुआ है । श्रुति में भी भर्ग को वीर्य कहा गया है । उससे पाप नष्ट होते या जलते हैं । भृजी धातु भर्जन अर्थ वाची होने से भर्ग तेज अर्थ का बोध कराता है । भर्ग का अर्थ मण्डल पुरुष और किरण भी होता है । दानादि गुण युक्त होने से उसे देव कहते हैं । ध्यै धातु का अर्थ चिन्तन करना है । वेद में इसका सम्प्रसारण है । इसलिए इसका अर्थ हुआ ध्यान करते हैं, चिन्तन करते हैं, निदिध्यासन करते हैं ।

धियो यो नः धी शब्द बुद्धि कर्म अथवा वाक् वाचक है इसलिए जो सविता देव हम सबको अर्थात् हमारी बुद्धि, क्रिया, वाणी को प्रेरणा देता है, जो सविता देव हम सबों की बुद्धि को कर्म और धर्मादि विषयों की ओर प्रचोदयात् प्रेरणा देता है (चुद् धातु का अर्थ प्रेरणा देना है ।) उस सविता सम्बन्धी वीर्य, तेज का ध्यान करता हूँ ।

तत्सवितुर्वरणीयं वीर्यं तेजो वा देवस्य ध्यायामः यश्च बुद्धिः प्रचोदयात् प्रेरयत्यस्माकं तं च ध्यायामः स च सवितैव भवति । लिंग व्यत्ययेन वा योजना, तत्सवितुर्वरणीयं भर्गो देवस्य ध्यायाम धिया यद् भर्गः अस्माकं प्रेरयति ।

उस सविता के वरणीय वीर्य या तेज का ध्यान करते हैं जो बुद्धि

को प्रेरणा देता है । जो हमको प्रेरणा करता है और जिसका हम ध्यान करते हैं, वह तो सविता ही है । लिंग व्यत्यय करने पर बनता है ।

उस सविता देव के वरणीय भर्ग का ध्यान करते हैं, जो भर्ग हमारी बुद्धि को प्रेरणा देता है ।

ब्रह्म पुराण में गायत्री अर्थ

भूरिति भूर्लोकः भुवः इत्यन्तरिक्षम् । स्वरिति स्वर्लोकः ।

भू से पृथ्वी लोक, भुव से अन्तरिक्ष तथा स्वः से स्वर्ग लोक जानने चाहिए ।

तदिति तेजः । तेजसोऽग्निर्देवता ।

तत् से तेजस् से अग्नि समझो ।

सवितुरिति सविता आदित्या यो यः ।

सवितुः का अर्थ सविता है, जिसे आदित्य कहते हैं ।

वरेण्यं—वरेण्यमित्यन्नं वरेणि यमन्नमेव प्रजापितः ।

वरेण्य अर्थात् अन्न वरेण्यं अर्थात् प्रजापति ।

भर्ग इत्यापो वै भर्गः । यदापस्तत्सर्वा देवता ।

भर्ग अर्थात् जो अप है वही सब देवता है ।

देवस्येति यो वै देवा वः पुरुषः स विष्णुः ।

देवस्य—जो देव वही पुरुष है । उसी को विष्णु कहते हैं ।

धीमहीत्यैश्वर्य तन्महेश्वरः ।

धीमहि—ऐश्वर्य को कहते हैं । जो ऐश्वर्य है वही परमेश्वर है ।

धिय इति स प्राणोऽयं वायुः ।

धी—का अर्थ प्राण है और जो प्राण है वही वायु है ।

यः इत्यध्यात्मं तत्परमं यः ।

यः का अर्थ आध्यात्मिक है ।

न इति पृथ्वी । इयं योनिः ।

न का अर्थ पृथ्वी है जो कि इसकी योनि या आधार है ।

प्रचोदयादिति कामं कामयेमिदं लोकं लोकाः प्रत्याचक्षते ।

इस लोक में कामना करना प्रचोदयात् है ।

स्कन्द पुराण की सूक्त संहिता का मंत्रार्थ

योनोऽस्माकं धियश्चिन्तान्यन्तर्यामि स्वरूपतः ।
प्रचोदयात् प्रेरयेच्च तस्य देवस्य सुव्रताः ॥

हमारी बुद्धि तथा विचारों के अन्तर्यामी स्वरूप से शुभ कर्मों में जो प्रेरित करे, उसका हम व्रत करते हैं ।

दीप्तस्य सर्वजन्तूनाम् प्रत्यक्षस्य स्वभावतः ।
सवितुः स्वात्मभूतन्तु वरेण्यं सर्व जन्तुभिः ॥

समस्त जन्तुओं से प्रत्यक्ष आत्मा रूप से विद्यमान सविता रूप परमेश्वर परमात्मा का वर्णनीय तेज समस्त प्राणियों द्वारा चिन्तनीय है ।

स्वमाया शक्ति संभिन्न शिवरुद्रादिसंज्ञितम् ।
आदित्य देवतायास्तु प्रेरकं परमेश्वरम् ॥

अपनी माया शक्ति से ब्रह्म शिव रुद्रादि भिन्न-भिन्न संज्ञा वाले, सूर्य नारायण के प्रेरक परमेश्वर ।

आदित्येन परिज्ञातं वयं धीमह्युपास्महे ।
सावित्र्यः कथितो ह्यर्थ संग्राहेण मयादरात् ॥

सूर्य रूप से ज्ञात परमेश्वर की हम उपासना करते हैं, यह संक्षेप से गायत्री का अर्थ कहा है ।

विष्णु धर्मोत्तर का मन्त्र वर्णार्थ

कर्मेन्द्रियाणि पंचैव बुद्धीन्द्रियाणि पंच यः ।
पञ्च बुद्धीन्द्रियार्थाश्च भूतानां चैव पंचकम् ॥

पाँच कर्मेन्द्रिय-पाँच बुद्धीन्द्रिय अर्थात् ज्ञान इन्द्रिय और पाँच-पाँच इनके व्यापार अर्थात् इनका ज्ञान तथा पाँच महाभूत ।

मनो बुद्धिस्तथैवात्मा अव्यक्तश्चित् यदुत्तमम् ।
चतुर्विंशति एतानि गायत्र्या अक्षराणि च ॥
प्रणवं पुरुषं सर्वांग पञ्चविंशकम् ।

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये चौबीस गायत्री के अक्षर हैं । इनमें पच्चीसवां अक्षर प्रणव पुरुष है जो कि व्यापक है ।

प्रपंचसार तन्त्रोक्त अर्थ

भूः पदाद्या व्याहृतयो भूः शब्दस्तदिति वर्तते ।
तत्पदं सदिति प्रोक्तं सन्मात्रत्वात् तु भूरतः ॥

व्याहृतियों में भूः शब्द आरम्भ में है जिसका अर्थ तत् है । तत् सत् का द्योतक है । सत् कहने से सत्ता का भान होता है । इससे सगुण ब्रह्म का परिचय मिलता है ।

भूतत्वात् कारणत्वाच्च भुवः शब्दस्य संगतिः ।
सर्वस्य स्वीरणात् स्वात्मतया च स्वरितीरितम् ॥

भूतत्व से उत्पादन कारण अर्थ निकलता है । भुवः से संगति लगती है और स्वः से सुख का संकेत मिलता है ।

तद् द्वितीयेकवचनमनेनाऽखिल वस्तुतः ।
सृष्ट्यादि कारणं तेजो रूपमादित्य मण्डले ॥
अभिध्येयं सदानन्दं परं ब्रह्माऽभिधीयते ।
यत्तु सवितुरित्युक्तं षष्ठ्येकवचनात्मकम् ॥

तत् शब्द द्वितीया का एक वचन है जिसका अर्थ है सम्पूर्ण वस्तुओं का सृष्टि कर्त्ता । आदि में कारणीभूत, तेजोमय आदित्य मण्डल में जो आनन्द रूप परब्रह्म है, उसका ध्यान करने के लिए तत् का प्रयोग है । वह तत् सत् है, वह सविता है जो कि षष्ठी का एक वचन है ।

धातोरिह विनिष्पन्नं प्राणि-प्रसव-वाचकात् ।
सर्वासां प्राणिजातीनामिति प्रसवितुः सदा ॥

वह धाता है उससे प्राणियों का प्रसव होता है । वह सब प्राणियों का निरन्तर प्रसव करता है इसलिए उसे सविता कहते हैं ।

वरेण्यं वरणीयत्वात् सेवनीयतया तथा ।
भजनीयतया सर्वैः प्रार्थनीयतया स्मृतम् ॥

वरणीय होने के कारण उसे वरेण्यं कहते हैं । वह उपासना करने के योग्य है, भजन करने के योग्य है तथा सबों के द्वारा प्रार्थना करने योग्य है ।

पूर्वस्याद्याक्षरस्येवं व्याहृतिर्भूरिति स्मृता ।
पापस्य भर्जनाद्भर्गो भक्तस्निग्धतया तथा ॥

इन पहले अक्षरों के लिए भूः व्याहृति का प्रयोग होता है । पापों के भर्जन और भक्तों के लिए स्नेहवत्ता होने के लिए वह भर्ग कहलाता है ।

देवस्य वृष्टि दानादि गुणयुक्तस्य नित्यशः ।
प्रभूतेन प्रकाशेन दीप्य मानस्य वै तथा ॥

वृष्टि, दान आदि गुण होने से वह देव कहलाता है । प्रभूत है, प्रकाशवान् है, वह दीप्तमान है ।

ध्यै चिन्तायामतो धातो निष्पन्नं धीमहीत्यदः ।
निगताद्येन दिव्येन विद्यारूपेण चक्षुषा ॥

'ध्यै' धातु का अर्थ चिन्तन है । उससे धीमहि बनता है, वह निगम आदि दिव्य विद्या तथा दिव्य चक्षु द्वारा चिन्तन में आता है ।

दृश्यो हिरण्मयो देव आदित्ये नित्यसंस्थितः ।
हीनता रहितं तेजो यथा स्यात् स हिरण्मयः ॥

वह हिरण्मय देव के दृश्य है जो कि आदित्य में नित्य स्थित है । उस तेज में किसी प्रकार की हीनता नहीं है, इसलिए उसे हिरण्यमय कहा जाता है ।

यः सूक्ष्मः सोऽहमित्येव चिन्तयामः सदैव तु ।
द्वितीयाद्याक्षरस्यैवं व्याहृतिर्भुव ईरिता ॥

यह जो सूक्ष्म है वही मैं हूँ, इस तरह का चिन्तन नित्य करना

है ।इन दूसरे आठ अक्षरों की भुवः व्याहृति है ।

धियो बद्धिर्मनोरस्यस्छान्दसत्वाद्य ईरित ।
कृतश्च लिंगव्यत्यासः सूत्रात् सुपतिङ्उपग्रहात् ॥

धिय का अर्थ बुद्धि है, छन्द में इसको सुपतिङ् ग्रहण के लिए लिंग व्यत्यय द्वारा बनाया गया है ।

यत्तु तेजो निरुपमं सर्ववेद (देव) भयात्मकम् ।
भजतां पापनाशस्य हेतुभूतमिहोच्यते ॥

यह जो निरुपम तेज है और जो देवों के तेज से युक्त है, पाप नाश के लिए इसका भजन करते हैं ।

न इति प्रोक्त आदेश षष्ठ्यसौ युष्मदस्मदोः ।
तस्मादस्माकमित्यर्थ प्रार्थनायां प्रचोदयात्॥

नः आदेश रूप में प्रयुक्त हुआ है जो युष्मद अष्मद के षष्ठी रूप में आया है ।जो प्रार्थना के लिए हमें प्रेरणा देता है ।

भारद्वाज का गायत्री भाष्य

तदिति द्वितीयैक वचनम् ।अनेनाखिल जगदुत्पत्तिस्थितिलय-कारणभूतमुपनिषदि कथ्यमानं निरुपमं तेजः सूर्यमण्डलाभिध्येयं परब्रह्माभिधीयते ।

'तत्' शब्द द्वितीया का एकवचन है । सूर्य मण्डल में स्थित अनुपम तेज जिसे कि उपनिषदों में संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण भूत कहा गया है 'तत्' शब्द से उस तेज की ओर संकेत किया गया है ।

सवितुरिति षष्ठ्येकवचं ।षूञ, प्राणि प्रसवे ।

इत्यस्य धातोरेतदूपम् ।सर्वस्य भूतजातस्य प्रसवितुरित्यर्थः ।

''सवितु'' यह षष्ठी का एकवचन है ।षूञ धातु से उसकी उत्पत्ति है ।यह धातु प्राणियों के प्रसव अर्थ का वाची है ।उससे यह

रूप बनता है । इसलिए इसका अर्थ है–सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला ।

वरेण्यं वरणीयं–प्रार्थनीयम्–नियमादिभरपगत कल्मषैः सततं ध्येयम् ।

"वरेण्यं" का अर्थ है–वरणीय, प्रार्थनीय । नियमादि पालन करने में जिनके पाप नष्ट हो गये हैं । ऐसे निष्पाप पुरुषों द्वारा ध्यान करने योग्य ।

'भर्गः' भञ्जो आमर्दन, 'भृञ्' भर्जन इत्येतयोर्धात्वोर्भजतां पाप भर्जन हेतु भूतमित्यर्थ । 'भा' दीप्तावित्यस्य धातोर्व भर्गः तेज इत्यर्थः ।

'भर्ग' शब्द आमर्दन अर्थ वाची मञ्जो तथा भर्जन अर्थ वाची 'भृञ' धातु से बनता है, जिसके कारण, इसका अर्थ होता है भजन करने से पाप का भर्जन अर्थात् नाश होता है । भा का अर्थ दीप्ति भी होता है । यदि उस धातु से भर्ग बनाया जाता है, तो उसका अर्थ तेज होता है ।

देवस्य–वृष्टिदानादिगुणयुक्तस्य निरतिशयस्येत्यर्थः दीप्यते प्रकाशकत्वात् ।

वृष्टि, दान आदि गुण युक्त होने से उस आनन्द रूप को देव कहते हैं । प्रकाशक होने के कारण दीपयते शब्द का भी प्रयोग करते हैं ।

धीमहि–'ध्यै' चिन्तायाम् निगम निरुक्त विद्यारूपेण चक्षुषा योऽसावादित्ये हिरण्यमयः पुरुषः सोहमिति चिन्तयामि ।

धीमहि–'ध्यै' धातु से बना है, इस धातु का अर्थ चिन्तन करना है, निगम, निरुक्त विद्या रूपी नेत्रों से आदित्य में स्थित जो हिरण्मय पुरुष है वह मैं हूँ, ऐसा समझकर चिन्तन करता हूँ ।

धियः इति द्वितीयायाः बहुवचनम् य इति छांदसत्वाद् लिंग व्यत्ययः । यत्तेजः सवितुर्देवस्यवरेण्यमस्माभि अभिध्यातं भर्गो जपतां पापभञ्जनहेतुभूतं धीमहि उपास्महे ।

धियः—यह द्वितीया का एक वचन है । यः (यत्) द्वन्द्व में लिंग भेद है । जो सविता देव का भर्ग है । उसका हम वरण करते हैं, ध्यान करते हैं । वह जप करने वालों के पाप का नाश कर देता है । इसलिए उसकी उपासना करता हूँ ।

यत्तेजा नोऽस्माकं धियो बुद्धिः श्रेयष्करेषु कर्मसु प्रचोदयात् प्रेरयेदित्यर्थ इति ।

यह तेज हम लोगों की धी—बुद्धि को श्रेयस्कर कार्यों की ओर प्रेरणा दे ।

अगस्त्य ऋषि का गायत्री वर्णन

यो देवः सविताऽस्माकं धियो धर्मादिगोचराः ।
प्रेरयेत्तस्य यद्भर्गस्तं वरेण्यमुपास्महे ॥

जो सविता देव हमारी बुद्धि को धर्मादि कार्यों में प्रवृत्त करता है, उस सविता देव के वर्णनीय तेज की हम उपासना करते हैं ।

आग्नेयनिर्वाण तन्त्रोक्त मन्त्रार्थः—
त्र्यक्षरात्मक तारेण परेशः प्रतिपद्यसे ॥
पाप हर्ता च संस्त्रष्टा यो देवः पर ॥

व्यक्षरात्मक अर्थात् प्राणरूप से परमात्मा तथा पापों का विनाशक जगत् का सृष्टा तथा प्रकृति के परे है, उस देव का प्रतिपादन करते हैं ।

असौ देवस्त्रिलोकात्मा त्रिगुणं व्याप्य तिष्ठति ।
यतो विश्वमयं ब्रह्म वाच्यं व्याहृतिभिस्त्रिभिः ॥

वह देव त्रिलोक की आत्मा है और तीन गुणों से व्याप्त होकर विद्यमान है । इस कारण विश्वमय ब्रह्म तीनों व्याहृतियों का वाच्य है ।

तारव्याहृतिवाच्ये यः सावित्र्याः ज्ञेय एव सः ।
जगद्रूपस्य सवितुः संस्त्रष्टु दीप्यते विभोः ॥

ओंकार व्याहृतियों का वाच्य है, जो गायत्री मन्त्र से जानने

योग्य है । जगद्रूप, सृष्टिकर्ता, सविता देव का प्रदर्शन है ।

प्रान्तर्गतं महद्वर्चो वरणीयं यतात्मभिः ।
ध्याये तत्परं सत्यं सर्वव्यापी सनातनम् ॥

सूर्य मण्डल के अन्तर्गत जो सत्य स्वरूप सर्वव्यापी सनातन, वर्णनीय महान् तेज है वह जितेन्द्रिय पुरुषों से ध्यान करने योग्य है ।

या भर्गः सर्वसाक्षी च मनो बुद्धीन्द्रियाणि नः ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रेरयद्विनियोजयेत् ॥

जो भर्ग सर्व साक्षी तथा हमारी बुद्धि, मन, इन्द्रियों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में प्रवृत्त करता है, उसका ध्यान करें ।

ब्रह्मपाराशरोक्त गायत्र्यार्थ–
देवस्य सवितुर्भर्गो वरणीयंच धीमहि ।
तदस्माकं धियो यस्तु ब्रह्मत्वे च प्रचोदयात् ॥

सविता देव के उस वरणीय भर्ग का चिन्तन करते हैं जो हमारी बुद्धि को ब्रह्म में प्रेरणा करता है ।

याज्ञवल्क्य ऋषि का गायत्री भाष्य

तत्–
तच्छब्देन तु यच्छब्दो बोद्धव्यः सततं बुधैः ।
उदाहृते तु यच्छब्दे: तच्छब्द: उदितो भवेत् ॥

तत् शब्द से यत् शब्द तथा यत् शब्द से तत् शब्द का बोध होता है ।

सवितुः–
सविता सर्वभूतानां सर्वभावांश्च सूयते ।
सर्वनान्प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते ॥

'सविता' सब भूत तथा सब भावों का उत्पादक है, उत्पादन और प्रेरणा करने के कारण उसका नाम 'सविता' है ।

वरेण्यं–

वरणीयश्च यो नित्यं संसारभयभीरुभिः ।
आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वै मुमुक्षुभिः ॥

संसार के भय से डरे हुए और मोक्ष की इच्छा रखने वाले सूर्यमण्डलान्तर्गत जो भर्ग नामक तेज है वह वन्दनीय है ।

भर्गो–

भ्रस्ज पाके भवेद्धातुर्यस्मात्पाचयते ह्यसो ।
भ्राजते दीप्यते यस्माज्जगदन्ते हरित्यपि ॥

'भ्रज' का अर्थ पकाना है । सबको पकाने, प्रकाशित करने तथा अन्त में हरण करने के कारण इस धातु से बने हुए शब्द का नाम पड़ा है ।

कालाग्नि रूपमास्थाय सप्तर्चिससप्तरश्मिभिः ।
भ्राजते तत्स्वरूपेण तस्माद् भर्गस्य उच्यते ॥

सात अग्नि तथा सप्त किरणों वाले, कालाग्नि के रखने वाले तथा प्रकाश देने वाले रूप के कारण 'भर्ग' नाम पड़ा है ।

भेति भ्राजयते लोकान् रेति रञ्जयते प्रजाः ।
ग इत्यागच्छतेऽजस्त्र भरगो भर्ग उच्यते ॥

'भ' लोकों में प्रकाश देने के अर्थ में 'र' प्रजा के रञ्जन करने के अर्थ में 'ग' अजस्त्र शक्ति के आने के अर्थ में है । इन तीनों से 'भर्ग' शब्द बना है जिससे तीनों ही शक्तियाँ उसमें मौजूद हैं ।

देवस्य–

दीव्यते क्रीड़ते यस्मादुच्यते शोभते दिवि ।
तस्माद् देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्व देवतैः ॥

स्वर्ग में प्रकाश करने तथा क्रीड़ा करने के कारण उसका नाम देव पड़ा है, जिसकी कि सब देवता स्तुति करते हैं ।

धीमहि–

देवस्य सवितुर्यच्च भर्गमन्तर्गतं विभुम् ।
ब्रह्मवादिन एवाहुर्वरेण्यं तच्च धीमहि ॥

सविता देव में जो तेज है जिसे भर्ग कहते हैं ब्रह्म ज्ञानी उसे ही वरेण्य कहते हैं, उसका ध्यान करते हैं ।

धियो योन: प्रचोदयात्–
चिन्तयामो वयम्भर्गो धियो यो न: प्रचोदयात् ।
धर्मार्थ काम मोक्षेषु बुद्धि वृत्तिं पुन: पुन: ॥

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में बुद्धि को बार–बार प्रेरणा देने के लिए हम भर्ग का चिन्तन करते हैं ।

गायत्री पर शंकराचार्य का भाष्य

तत्र शुद्ध गायत्री प्रत्यागब्रह्मैक्यबोधिका । धियो यो न: प्रचोदयादिति । नोऽस्माकं धियो बुद्धय:, प्रचोदयाद् प्रेरयेदिति सर्वबुद्धि संज्ञात: करणप्रकाशकसर्व साक्षी प्रत्यगात्मेत्युच्यते । यस्य प्रचोदयात् शब्दनिर्दिष्टस्यात्मन: स्वरूपभूतं पर ब्रह्म तत् सवितुरिति आदि पदै निर्दिश्यते ।

तत्र ओम् तत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणा त्रिविध: स्मृत: इति तच्छब्देन प्रत्यग्भूतं स्वत: सिद्धं परं ब्रह्मोच्यते । सवितुरिति सृष्टिस्थिति प्रलय लक्षणकस्य सर्व प्रपंच कस्य समस्तद्वैत विभ्रमस्याधिष्ठान लक्ष्यते, वरेण्यमिति सर्ववरणीयं निरतिशयानन्दरूपम् । भर्ग इत्यविद्यादि दोष भर्जनात्मक ज्ञानैक विषयत्वम् । देवस्येति सर्व द्योतनात्मकाखण्डचिदेकरसम् । सवितुर्देवस्येत्यत्रषष्ठ्यर्थो राहो शिरोवदौपचारिक बुद्ध्यादि सर्व दृश्य साक्षिलक्षणं यन्मे स्वरूपं तत्सर्वाधिष्ठानभूतं परमानन्द निरस्तसमस्तानथ रूपं स्वप्रकाशचिदात्मकं ब्रह्मेत्येवं धीमहि ध्यायेम । एवं सति सह ब्रह्मणा स्वविवर्तजडप्रपञ्च रज्जुसर्पन्यायेनापवाद: ।

समानाधिकरण्यरूपमेकत्वं सोऽयमिति न्यायेन सर्व साक्षि

प्रत्यगात्मना ब्रह्मणा सह तादात्म्येकरूपत्वं भवतीति सर्वात्मक ब्रह्मबोधकोऽयं गायत्री मन्त्रः सम्पद्यते, त्रिमहाव्याहृतीनामयमर्थः भूरिति सन्मात्रमुच्यते । भुवः इति सर्वं भाषयति प्रकाशयति इति व्युत्पत्या चिद्रूपमुच्यते । स्वः सुव्रियते इति व्युत्पत्या स्वरिति सुष्ठु सर्वैव्रियमाण सुखस्वरूपमुच्यते इति ।

शुद्ध गायत्री जीवात्मा और ब्रह्म की एकता का सूचक है । 'धियो यो नः प्रचोदयत्' अर्थात् हमारी बुद्धि को प्रेरणा देती है तथा जो अन्तः करण की प्रकाशिका तथा सर्वव्यापी है उसे प्रत्यगात्मा कहा जाता है ।

उसे प्रचोदयात् शब्द से आत्मा स्वरूप भूत परब्रह्म का तत् सवितुः आदि पदों से कथन किया है ।

यहाँ 'ॐ तत्सत्' इस पद में ब्रह्म के तीन प्रकारों का वर्णन है । तत् शब्द स्वतः सिद्ध सब भूतों मे स्थित परब्रह्म के लिए कहा जाता है । सविता, सृष्टि, स्थिति, प्रलय लक्षण वाले सब प्रपञ्च के समस्त द्वैत भ्रम के अधिष्ठान हैं–वरेण्यं । सर्व वरणीयं, निरतिशय एवं आनन्द रूप है । भर्ग अविद्या रूपी दोष को नष्ट करने वाला ज्ञान रूप है । 'देवस्य' सबका प्रकाशक अखण्ड–आत्मा एवं रस वाला देव है ।सवितुर्देवस्य' यहाँ षष्ठी है सम्बन्धकारक है । राहोः शिरो की तरह औपचारिक है । बुद्धि से सब पदार्थों का साक्षी रूप जो मेरा स्वरूप है वह सबका अधिष्ठान है । उस परमानन्द, सब अनर्थ रहित, स्वयं प्रकाश चैतन्य रूप ब्रह्म का ध्यान करते हैं । इस तरह ब्रह्म अपने ही विवर्त भूत जड़ जगत् रज्जु में सर्प की तरह अपवाद है ।

समान अधिकरण होने से एक रूपता है इस तरह सबका साक्षी जीवात्मा ब्रह्म के साथ तादात्म्य होने के कारण एकत्व है । यह गायत्री मन्त्र सर्वात्मक ब्रह्म का बोध कराने वाला है । तीन महाव्याहृतियों का अर्थ यों है । भूः का अर्थ सत् है, भुवः सबका प्रकाशक (इस व्युत्पत्ति से चिद् रूप कहलाता है) स्वः सुव्रियते इस व्युत्पत्ति से सब से प्रथित सुख रूप है ।

भट्टोजी दीक्षित विरचित
गायत्री का भाष्य

तदिति, 'षू' प्रेरणे । षूर्यति प्रेरयतीति । सविता सूर्यः तत्सम्बन्धि सूर्यमण्डलावच्छिन्नमिति यावत् ।

'षू' धातु का अर्थ प्रेरणा है । सूर्य को प्रेरणा करने के कारण ही सविता कहा जाता है अर्थात् सूर्य मण्डल में व्यापक तेज ही जो प्रेरणा देता है सविता है ।

दीप्यतीति देवः परमात्मा तस्य वरेण्यं सर्वैर्भजनीयम् वृञ, एण्यः ।

प्रकाश करने के कारण उसे देव कहते हैं । वह सविता देव है, परमात्मा है उसका वरण करना अर्थात् भजन करना, ''वृज'' धातु में एण्य प्रत्यय लगाने से वरेण्य शब्द बनता है ।

अविद्याकाम कर्मादि भर्जनाद्भर्गः स्वरूपात्मकं ज्योतिः ।

अविद्या रूपी काम कर्मादि का भर्जन या नाश करने के कारण उसे 'भर्ग' कहते हैं । वह स्वरूपात्मक ज्योति है ।

धीमहि तदेवाहमस्मि ।

तद्दासोऽहमिति वा ध्यायेम यः देवः ॥

नः अस्माकं धियः बुद्धिः प्रचोदयात् प्रेरयतीत्यर्थः ।

बाहुवलकक्षाऽर्थेलेट । लेटोऽडाटौ इत्याडागमः ।

भूः भुवः स्वः एते त्रयो लोकाः ॐ ब्रह्ममैवेति ॥

मैं वह देव हूँ या उसका दास हूँ, ऐसा ध्यान करता हूँ । वह हम सबों की बुद्धि को प्रेरणा करता है । बाहुबल कक्षाऽर्थे लेट । लेटोऽडाटौ इस सूत्र से आट लाया गया है ।

भूः भुवः स्वः—ये तीनों लोक हैं और 'ॐ' ब्रह्म है ।

वरदराज का गायत्री भाष्य

तत्छब्दश्रुतेर्यच्छब्दोऽध्याहारार्थः । सवितुः जगतां प्रसवितुः सविता वै प्रसवानामीशे । उत्तमेर्चिषे प्रसवस्य त्वमेकः इत्यादि श्रुतेः ।

तत् शब्द के सुनने से यत् शब्द वाची अर्थ लिया है । सविता का अर्थ है जगत् को प्रसव करने वाला । सविता सृष्टि का, प्रसव होने का ईश्वर है । प्रसव करने वालों अर्थात् सृष्टि रचयिताओं में से तुम एक उत्तम हो यह श्रुति है ।

वरेण्यम् वञ् सम्प्रक्तौ सण्य प्रत्ययः सर्वेषां सम्भजनीयम्

एण्य प्रत्यय लगाकर 'वृञ' धातु से वरेण्य बनता है । यह शक्ति के अर्थ में प्रयोग किया जाता है, इसलिए वरेण्यं का अर्थ होता है– चिन्तनीय भजनीय या चिन्तन करने के योग्य ।

भर्गस्तेजः भञ्जनाद्भर्ग प्रकाशप्रदानेन जगतो बाह्याभ्यन्तरतमो भञ्जकत्वात्भर्जनाद्वा कालात्मकतया सकल कर्मफल पाकहेतुत्वाद् भरणाद्वा वृष्टिप्रदानेन भूतानां भरण हेतुत्वात् ॥

'भर्ग' का अर्थ है–तेज । भञ्जन करने के कारण इसे 'भर्ग' कहते हैं । यह प्रकाश देकर जगत् क्रे बाहर और भीतर के अन्धकार–तम का नाश करता है, भञ्जन करता है । अथवा कालरूप होने के कारण सब कर्मफलों को परिपक्व करने के कारण या भस्म करने के कारण भर्ग है, वृष्टि द्वारा भूतों का भरण भी इसी से होता है ।

देवस्य द्योतमानस्य धीमहि चिन्तयामः । 'ध्यै' चिन्तयाम्, देवस्य सवितुर्वरेण्यं । यद्भर्गस्तद्ध्यायामः । आदित्य मण्डलान्तर्वर्त्तिनं तेजोमयं पुरुषमनुचिन्तयामः य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः अथ य एष एतस्मिन्मण्डलेऽर्चि पुरुष इत्यादि श्रुतेः धियो यो नः सविता अस्माकं धियः दानोपादान विषयाणि ज्ञानानि प्रचोदयात् प्रचोदयति प्रवर्तयति तत्सवितुस्तद्भर्गश्चिन्तयाम इति ।

देवस्य का अर्थ 'प्रकाशमान' है और धीमहि का अर्थ चिन्तन करता हूँ–है । 'ध्यै' चिन्ता करना, चिन्तन करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है । सविता देव का जो वरणीय भर्ग है, उसका ध्यान करता हूँ । आदित्य–मण्डल के भीतर जो तेजोमय पुरुष है उसका चिन्तन करता हूँ । आदित्य अन्तर में हिरण्मय पुरुष है और जो इस मण्डल में तेजोरूप पुरुष है इत्यादि श्रुति वाक्य इसी अर्थ में कहे गये हैं ।

धियो यो नः जो हमारी ज्ञानोत्पादन विषय, ज्ञान आदि की ओर प्रेरित करता है उस सविता देव के भर्ग का चिन्तन करता हूँ ।

विद्यारण्य स्वामी का गायत्री मन्त्रार्थ

तदिति वाङ् मनोगम्यं ध्येयं यत्सूर्यमण्डले ।
सवितुः वाङ् सकलोत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् ॥

समस्त विश्व की उत्पत्ति, पालन, संहार करने वाले सविता देव के मण्डल में जो वाणी मन से भी अगम्य 'तत्' है उसका ध्यान करना चाहिए ।

वरेण्यमाश्रयणीयं यदाधारमिदञ्जगत् ।
भर्गः स्वसाक्षात्कारेणाविद्यातत्कार्य दाहकम् ॥

जो इस जगत् का आधार तथा सबका आश्रय लेने योग्य है वह भर्ग अपने साक्षात्कार से अविद्या और तज्जनित कार्यों का नाशक है ।

देवस्य द्योतमानस्य ह्यानन्दात्क्रीड़तोऽपि वा ।
धीमह्यहं स एवेति तेनैवाभेद सिद्धये ॥

आनन्द स्वरूप से प्रकाशमान तथा क्रीड़ा करने वाले सविता देव का वह सविता ही है । ऐसा जानकर अभेद सिद्धि के लिए ध्यान करते हैं ।

धियोऽन्तःकरण वृत्तिश्च प्रत्यक्प्रवणचारिणी ।

धियः (बुद्धि) अन्तःकरण की वृत्ति और जीवात्मा के समक्ष चलने वाली है ।

य इत्यलिङ् धर्मो यत्सत्य ज्ञानादि लक्षणम् ।

यह लिङ् व्यत्यय है जो सत्य तथा ज्ञान स्वरूप है ।

नोऽस्माकं बहुधाभ्यस्त भिन्न भवेदृशां तथा ।

अनेक प्रकार के अभ्यास से अनेक भेद देखने वाले लोगों को–

प्रचोदयात्प्रेरयतु प्रार्थनेयं विचार्यते ।

प्रचोदयात् अर्थात् प्रेरणा करे । यह प्रार्थना है ।

तारानाथ तर्कवाचस्पति का गायत्री मन्त्रार्थ

सवितुर्देवस्य भर्गाख्यं परब्रह्म स्वरूपं तेज । चिन्तनीयं मम हृत्पद्मस्थितेनैव भर्गाख्येन तेजसा प्रेर्यमाणस्तदेव–भूर्लोकान्तरिक्षलोक स्वर्गलाकादि ब्रह्माण्डोदरवृत्ति सकल चराचर त्रैलोक्य स्वरूपं मम हृदयै वाह्यै च सूर्यमण्डले वर्तमान तेजसा एकीभूतं परब्रह्मस्वरूपं ज्योतिरहमिति चिन्तयज्जपं कुर्यादिति ॥

सविता देव नाम का परब्रह्म स्वरूपी प्रार्थनीय तेज हमारे हृदय में स्थिर भर्ग नाम के तेज से प्रेरित है । वही पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष, स्वर्गलोक आदि ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत विद्यमान चराचर त्रैलोक्य रूपी हमारे हृदय में तथा बाहर सूर्य मण्डल में वर्तमान तेज से एक रूप परब्रह्म रूप ज्योति है वह मैं हूँ ऐसा चिन्तन करता हुआ जप करे ।

गायत्री के कुछ विशेष अर्थ

श्री ब्रह्म गायत्री महामन्त्रीय शुक्ल भाष्यम् ग्रन्थ में गायत्री के कुछ विशेष अर्थ किए गये हैं, जिन्हें पाठकों की जानकारी के लिए नीचे उद्धृत किया जाता है ।

(१) अन्वय–

सवितुर्देवस्य तद् भर्ग ॐ धीमहि भूर्भुवः स्वः वरेण्यम् यो नो धियः प्रचोदयात् ।

पदार्थ—(सवितुः) सूर्यादिमण्डलान्तर्गतस्य (कथं भूतस्य सवितुः) देवस्य, प्रकाशमानस्य (तद्भर्गः) तत्पापानां भर्जन हेतु भूत भर्गाख्यम् तेजो गायत्र्याः स्वरूपम् (ॐ) ब्रह्म (धीमहि) ध्यायाम्, (कथम्भूतम्) (स्वरूपम्) (भूर्भुवः स्वः) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादिभिः वरेण्यं वरणीयमुपासनीयम् वा (यः) यद् गायत्र्याः स्वरूपम् (नः) अस्माकम् । (धियः) बुद्धि प्राणांश्च कर्मणो वा (प्रचोदयात्) प्रेरयति प्रेरयेत् वा स्वप्रकाशेनात्मज्ञानमपदिशतीति भाषाः (सवितुः) । सूर्योदय मण्डल के भीतर (किस प्रकार का है सविता) देवस्य प्रकाशमान का (तद्भर्ग) उसका भर्ग—पापों का नाश करने के कारण भर्ग कहलाने वाले तेज का, जो कि गायत्री का स्वरूप है, ॐ 'ब्रह्म' धीमहि ध्यान करता हूँ कथं भूतं स्वरूप ? कैसा है वह स्वरूप ? भुर्भुवः स्वः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि द्वारा वरण करने, उपासना करने योग्य । यह जो गायत्री का स्वरूप है, हमारी बुद्धि, प्राण एवं कर्मों की प्रेरणा में अपने प्रकाश से आत्मज्ञान् का उपदेश दे ।

(२) तद्देवस्य वरेण्यम् भर्गो धीमहि भूर्भुवः स्वः सवितुर्यो नो धियः प्रचोदयात् ।

यत् (देवस्य) द्योतनात्मक पदार्थस्य मण्डलान्तर्गतम् (वरेण्यम्) श्रेष्ठमुपासनीयम् (भर्गः) भर्गाख्यः तेजो गायत्र्या स्वरूपम् (ॐ) ब्रह्म, धीमहि (ध्यायाम) कथं भूतस्य देवस्य (भुर्भुवः स्वः) अग्निवाय्वादित्यादिक संज्ञकस्य पुनः (कथम्भूतस्य देवस्य) सवितु प्रेरकस्य (यः) तो देवो द्योतनात्मक पदार्थः (नः) अस्माकमं (धियः) बुद्धि (प्रचोदयात्) धर्मादि लौकिक पारलौकिक कार्येषु प्रेरयति ।

वह मण्डल के भीतर जो प्रकाशमान पदार्थ है, श्रेष्ठ है, उपासना करने योग्य है । भर्ग नाम से जो प्रसिद्ध है और जो तेज गायत्री स्वरूप है उस ब्रह्म का चिन्तन या ध्यान करता हूँ कैसा है वह देव अग्नि, वायु आदि संज्ञक, फिर कैसा है वह तेज—प्रेरक । जो

द्योतनात्मक पदार्थ है वह हमारी बुद्धि को धर्मादि लौकिक कार्यों में प्रेरित करे ।

(३) सवितुर्देवस्य तद्भर्गः ॐ धीमहि भूर्भुवः स्वर्वरेण्यम् यो नो धियः प्रचोदयात् ।

सूर्य मण्डल के मध्य में प्रकाशमान् जो गायत्री स्वरूप तेज है उस ब्रह्म का ध्यान करता हूँ । जिस तरह से ऋक्, यजु, साम ये तीनों गायत्री के रूप हैं वे हमारी बुद्धि को प्रेरणा दें ।

(४) सवितुर्देवस्य तत् भूर्भुवः स्वर्वरेण्यम् । भर्गो धीमहि ॐ यो नः धियः प्रचोदयात् ।

पदार्थ–(सवितुः) चन्द्रस्य मण्डलान्तर्गतम् (कथं भूतस्य सवितुः) देवस्य प्रकाशमानस्य (तद् भुर्भुवः स्वर्वरेण्यम्) तद् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादिभिर्वरणीयुपासनीयम् वो (भर्गः) भर्गाख्यम्पापमर्जनहेतुभूतम् तेजो गायत्र्याः स्वरूपम् (धीमहि) ध्यायेम (केन प्रकारेण) (ॐ) ओंकारस्याकारोकारमकार मात्रा त्रय स्वरूपेण (यः) यद् गायत्र्याः स्वरूपम् (न) अस्माकम् (धियः) बुद्धि प्रचोदयात् प्रेरयति ।

चन्द्र मण्डल के भीतर प्रकाशमान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि द्वारा वरणीय उपासनीय पापों को नष्ट करने वाले भर्ग नामक तेज जो कि गायत्री का स्वरूप है ध्यान करता हूँ । ओंकार की अकार उकार तथा मकार मात्रा त्रयस्वरूप से जो गायत्री का स्वरूप है वह हमारी बुद्धि को प्रेरित करे ।

(५) सवितुर्देवस्य तद्भर्गः ॐ धीमहि भूर्भुवः स्वर्वरेण्यम् यो नो धियः प्रचोदयात् ।

अग्नि मण्डलान्तर्गत प्रकाशमान पापों के नाश करने वाला ऋक्, यजु, साम रूप तेज जो कि गायत्री स्वरूप वाला है उस ब्रह्म का ध्यान करता हूँ । वह इच्छा ज्ञान तथा क्रियाशक्ति वाला है और हमारे लिए उपासनीय है यह गायत्री का स्वरूप हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे ।

(६) सवितुर्देवस्य तद् वरेण्यं भर्ग ॐ धीमहि भूर्भुवः स्वर्योनो धियः प्रचोदयात् ।

पदार्थ–(सवितुः) सूर्यादेवमण्डलान्तर्गतम् । (कथं भूतस्य) सवितु (देवस्य) प्रकाशमानस्य (तद् वरेण्यम्) तच्छन्दमुपासनीयम् (भर्ग) तेजो गायत्र्याः स्वरूपम् ।

(ओउम्) ब्रह्म धीमहि ध्यायेम (केन प्रकारेण) भूर्भुवः स्वः पदादि शीर्ष पर्यन्तेन (यः) तद् गायत्र्याः स्वरूपम् नः अस्माकम् (धियः) बुद्धीः (प्रचोदयात्) प्रेरयति ।

सूर्य मण्डल के भीतर प्रकाशमान जो उपासनीय श्रेष्ठ भर्ग है और गायत्री का तेजो रूप है उस ब्रह्म का ध्यान करता हूँ । वह पाद से शिर तक गायत्री का स्वरूप है, हमारी बुद्धि को प्रेरित करे ।

(७) सवितुर्देवस्य यद् वरेण्यं भर्गः ॐ धीमहि भूर्भुवः स्वर्यो नो धियः प्रचोदयात् ।

पदार्थ–(सवितु) प्राणशक्त्यान्तर्गत (कथं भूतस्य सवितुः (देवस्य प्रकाशमानस्य (तद्वरेण्यम्) तद्वरणीयं उपासनीयम् (भर्गः) तेजः प्राणाशक्त्याख्य गायत्र्याः स्वरूपम् (ॐ) ब्रह्म (धीमहि) ध्यायेम् (किं धीमहि) (भूर्भुवः स्वः) प्राणायामैः (यः) यद् गायत्र्यः स्वरूपम् (न) अस्माकम् (धियः बुद्धीः) (प्रचोदयात्) प्रेरयेतु वा ।

प्राण के भीतर प्रकाशमान देव के वरणीय उपासना के योग्य तेज का जो प्राण शक्ति नाम से गायत्री रूप में ब्रह्म है उसका ध्यान करते हैं । प्राणायाम जो कि गायत्री का स्वरूप है हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे ।

(८) सवितुर्देवस्य तद् वरेण्यं भर्ग ॐ धीमहि भुर्भुवः स्वर्यो नो धियः प्रचोदयात् ।

पदार्थ–सवितुः वायोमण्डलान्तर्गतम् (कथ भूतस्य) सवितु (देवस्य) प्रकाशमानस्य (तद्वरेण्यम्) तद्वरणीयं उपासनीयम् (भर्गः) वायाम्याख्यम् तेजो गायत्र्या स्वरूप (ॐ) ब्रह्म (धीमहि (ध्यायेम (कस्मिन काले) (भूर्भुवः स्वः) प्रातर्मध्याह्ने सायं काले च (यः) यद्गायत्र्याः स्वरूपम् (भूः) अस्माकम् (धियः)

बुद्धि: (प्रचोदयात्) प्रेरयति प्रेरयेत् वा ।

वायुमण्डल के भीतर जो प्रकाशमान तेज है उसका वरण करते हैं, उपासना करते हैं, वह वायव्य नाम से प्रसिद्ध । गायत्री का तेज स्वरूप है उस ब्रह्म का ध्यान करते हैं । प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल में गायत्री स्वरूप वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे ।

(९) सवितुर्देवस्य तद् वरेण्यं भर्ग ॐ धीमहि भूर्भुवः स्वर्यो नो धियः प्रचोदयात् ।

पदार्थ—(सवितुः) सूर्यादेमण्डलान्तर्गतम् (कथम्भूतस्य सवितुः) (देवस्य) प्रकाशमानस्य (तद्वरेण्यम्) तद्वरणीयम् उपासनीयम् वा (भर्गः) तेजो गायत्र्यी स्वरूपम् ॐ ब्रह्म (धीमहि ध्यायेम) कस्मिन् स्थाने (भूर्भुवः स्वः) पृथिव्यन्तरिक्षद्युस्थानेषु (यः) तद् गायत्र्यास्वरूपम् (नः) अस्माकम् (धियः) बुद्धिः (प्रचोदयात्) प्रेरयति प्रेरयेत् वा ।

सूर्य आदि मण्डल के भीतर जो प्रकाशमान है वह वरण करने या उपासना करने योग्य है, उस गायत्री के तेजरूप ब्रह्म का ध्यान करता हूँ जो गायत्री का स्वरूप है, वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे ।

(१०) सवितुर्देवस्य तद् वरेण्य् भर्गो ॐ धीमहि भूर्भुवः स्वर्यो नो धियः प्रचोदयात् ।

सूर्य मण्डल के भीतर प्रकाशमान वरेण्य या उपासनीय गायत्री स्वरूप तेज है, उस ब्रह्म का ध्यान करता हूँ, वह षट्चक्र के भीतर मूलाधार—विशुद्ध से सहस्रार पद्मादि में है वह गायत्री स्वरूप हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे ।

(११) तद् सवितुर्देवस्य भूर्भुवः स्वर्वरेण्यम् भर्गः धीमहि यो नो धियः प्रचोदयात् ।

उन प्रेरणा देने वाले अन्तर्यामी विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, इन्द्र आदि को जो प्रकाशमान के साकार रूपधारी हैं और जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए वरणीय अथवा उपासनीय है, उस गायत्री की

शक्ति पृथ्वी स्वरूप को ध्यान करते हैं, वह शिव रूप हमारी बुद्धि को तथा कर्म को प्रेरणा दे ।

(१२) तद् ॐ धीमहि भूर्भुवः स्वर्वरेण्यम् सवितुर्देवस्य भर्गो नो धियः प्रचोदयात् ।

उस गायत्री का ध्यान करते हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्वारा उपासनीय है और जो प्रकाशमान सूर्य मण्डल के मध्य में प्रकाश करती है । वह ज्योति स्वरूप गायत्री हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे ।

⊙

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा